श्रीः ।

विचारमाला

साधु श्रीअनाथदासजी विरचित

साधु श्रीगोविंददासकृत टीकासहित

पंडित श्रीरघुवंशशर्म विशोधित

सर्व मुमुक्षुओंके हितार्थ

हरिप्रसाद भगीरथजीने

बम्बई

"गुजराती" छापखानेमें छपायके प्रसिद्ध किया.

आवृत्ति पहली.

संवत् १९६७. सन १८२२.

दोहा.

अर्ध श्लोक करि कहत हूं, कोटि ग्रंथको सार ॥
ब्रह्म सत्य मिथ्या जगत, जीव ब्रह्म निर्धार ॥ १ ॥
ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित, ताकी वानी वेद ॥
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रमछेद ॥ २ ॥

प्रस्तावना.

सर्व सिद्धान्तशिरोमणि वेदान्तसिद्धान्तही मुमुक्षुको उपादेय है । इसके ज्ञानार्थ सूत्र भाष्य आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थ होनेपरभी उनमें संस्कृतानभिज्ञ साधारण पुरुषोंकी प्रवृत्ति अशक्य समझकर परम दयालु साधु श्रीअनाथदासजीने इस ग्रन्थके अष्टम विश्रामके ४० वें दोहेके लेखानुसार अपने मित्र श्रीनरोत्तमपुरीजीकी सूचनासे यह " श्रीविचारमाला " नामक २११ दोहाबद्ध भाषाग्रन्थ बनाया. इसमें सर्व वेदान्त ग्रन्थोंका गूढ रहस्य प्रतिपादित है. इसकी कविता उत्कृष्ट है और यह वेदान्तविषयक भाषाग्रन्थोंमें सर्वोत्तम तथा प्रथम है, क्योंकि आजसे २४१ वर्ष पहले यह लिखा गया है. इस ग्रन्थका प्रतिपाद्य विषय इतना गहन और सूक्ष्म है कि टीका विना हृदयंगम होना अतिकठिन है. इसपर एक सुविस्तृत संस्कृतटीका तथा ८००० आठ हजार श्लोक भाषाटीका है. उक्त दोनों टीका मन्दप्रज्ञ पुरुषोंके लिये अनुपयुक्त जानकर असाधारण प्रतिभाशाली दादूपंथी श्रीगोविन्ददासजीने बाबा वनखंडीके शिष्य श्रीहरिप्रसादजीकी इच्छासे यह " बालबोधिनी " नामक टीका रची. यह टीका सुगम रूपसे इस ग्रन्थका आशय खोलनेवाली होनेके कारण सर्व साधारण मुमुक्षुओंको अत्युपयोगी जान " पं. हरिप्रसाद भगीरथजी प्रा. पु. " के अध्यक्ष श्रीमान् पं. " व्रजवल्लभ हरिप्रसादजी " ने शास्त्री रघुवंशशर्मा द्वारा शोधन कराके छपाया. आशा है कि विचारशील पाठक इसका अभ्यास कर दृष्टि दोषोंको क्षमा करतेहुए इस परिश्रमको सफल करेंगे.

शोधक.

अथ श्रीविचारमालाकी मार्गदर्शक अनुक्रमणिका.

प्रथम विश्रामकी अनुक्रमणिका १.

शिष्यकी आशंका १-२३.

विषय. प्रसंग अंक.

द्वितीय विश्रामकी अनुक्रमणिका २.

सत्संगमहिमा २३-४७

तृतीय विश्रामकी अनुक्रमणिका ३.

सप्तज्ञानभूमिकावर्णन ४७-६१

चतुर्थ विश्रामकी अनुक्रमणिका ४.

ज्ञानसाधनवर्णन ६२-१००.

अष्टम विश्रामकी अनुक्रमणिका ८.

आत्मज्ञानीकी स्थिति १४१-१७३

इति श्रीविचारमालाया अनुक्रमणिका.

समाप्ता.



तत्सद्ब्रह्मणे नमः

अथ गोविंददासकृतबालबोधिनीटीकासहित–

विचारमाला.

शिष्य–आशंकावर्णनं नाम

प्रथमविश्रामप्रारंभः ॥ १ ॥

(१) दोहा–गणपति गिरिपति गोपति, गिरिजा गौरि दिनेश ॥ ईश पंच मम दासके, हरो सु पंच क्लेश ॥ १ ॥ श्रीगुरु दास गोपाल नति, सत सुख परमप्रकाश ॥ जिन पदरज शिर धारकर, सहविलास तम नाश ॥ २ ॥ श्रीमत् हरिप्रसादजू, चिद-

वपु रहितप्रछेद ॥ विद्याप्रद गुरु तिहि नमो, जिह प्रसाद गत खेद ॥ ३ ॥ गुरु जुग पंच मनाइके, यिह धर निज उपकार॥ विचारमाल टीका रचूं, बालबोधिनी सार ॥४॥

(२) ननु—टीका करणे लगे तो टीकाका लक्षण कहा चाहिये; काहेतें लक्षण अरु प्रमाणकर वस्तुकी सिद्धि होवै है ? तहां सुनोः—वाक्यके पद भिन्नभिन्न कहणे, औ पदोंके अर्थ कहणे, औ व्याकरणके अनुसार पदोंकी व्युत्पत्ति करणी, औ वाक्यके पदोंका अन्वय (संबंध) करणा, औ वाक्यके अर्थमें शंका होवै ताका समाधान करणा; इन पंचलक्षणवाली टीका कहिये है। अब ग्रंथके आरंभमें करणीय जो मंगल तिसके प्रयोजन कहै हैं; काहेतें? प्रयोजन विना मंदभी प्रवृत्त होवै नहीं:—ग्रंथकी निर्विघ्न समाप्ति औ श्रेष्ठाचार औ ग्रंथकर्तामें नास्तिकभ्रांतिकी निवृत्ति इत्यादिक मंगलके प्रयोजन हैं. सो मंगल वस्तुनिर्देशरूप औ आशीर्वादरूप औ नमस्काररूप भेदतें त्रिधा है। सगुण वा निर्गुण परमात्मा वस्तु

कहिये वस्तुनिर्देश है, तिसका निर्देश कहिये कीर्तन कहिये है। स्व वा शिष्यके वांछितका अपने इष्टदेवसैं प्रार्थन आशीर्वाद कहिये है। अब तिनमैंसैं ग्रंथके प्रयोजनका दिखावते हुए नमस्काररूप मंगल करै हैं:-

दोहा--नमो नमो श्रीराम जू, सत चित आनंदरूप ॥ जिहि जाने जगस्वप्नवत, नासत भ्रम तम कूप ॥ १ ॥

टीका:--श्रीसहित जो सगुण राम है, ताके तांई नमस्कार है औ सत चित् आनंदस्वरूप जो निर्गुण ब्रह्म है, ताके तांई नमस्कार है। जू शब्दका देहलीदीपककी न्याई दोनों ओर संबंध है। सत्य कहिये त्रिकाल अबाध्य, चित् कहिये अलुप्त प्रकाश, आनंद कहिये दुःखसंबंधतैं रहित निरतिशयसुखरूप, जिसके साक्षात्कारतैं अविद्या ततकार्य रूप जगत् निवृत्त होवै है। दृष्टांतः--जैसे जाग्रत्के ज्ञानतैं स्वप्न जगत् निवृत्त होवै है तद्वत्। काहेतैं भ्रमरूप होनेतैं। कैसा जगत् है, तमकूप कहिये

अधंकूपकी न्यांई दुःखदाई है। ब्रह्मज्ञानतैं अविद्या तत्कार्यरूप अनर्थकी निवृत्ति कही, सो परमानंदकी प्राप्तिसैं विना बनै नहीं, याते परमानंदकी प्राप्ति अवश्य होवै है; सो ग्रंथका प्रयोजन है ॥ १ ॥

पूर्व कहे अर्थमे शंकापूर्वक उत्तर–

दोहा–राम मया सतगुरुदया, साधुसंग जब होय॥ तब प्रानी जाने कछु, रह्यो विषयरस भोय॥ २॥

टीका:–वादी शंका करै हैः–कछू कहिये तुच्छ जो विषयसुख,तामे रह्यो भोय कहिये आसक्त हुआ जो जीव, सो ब्रह्मकूं कैसे जाने है ? उत्तरः–साधु कहिये आगे कहने हैं लक्षण जिनके, संग कहिये तिनमें निष्काम प्रीति। राममया कहिये ईश्वरके ध्यानकर जो चित्तकी एकाग्रता औ सतगुरु कहिये यथार्थगुरु, अर्थात् ब्रह्मश्रोत्री ब्रह्मनिष्ठ, तिनकी दया कहिये शिष्यकूं तत्त्वसाक्षात्कार होवै इस संकल्पपूर्वक जो महावाक्यका उप-

देश, सो जब होवै तब प्राणी कहिये प्राणधारी जीव, जानै कहिये ब्रह्मको अपना आत्मा जानै है। सो ब्रह्म आत्माका अभेद इस ग्रंथका विषय है। अधिकारी अनुबंध चतुर्थविश्राममैं कहेंगे, प्रयोजन अनुबंध प्रथम दोहेमैं कहा, इन तीनोंके बननेसैं संबंध अनुबंध अर्थतैं सिद्ध होवै है ॥ २ ॥ इस रीतिसैं अनुबंध कहकर अब ग्रंथके रचनेकी प्रतिज्ञा करै हैं:—

दोहा—पदवंदन आनंदयुत, करि श्री देव मुरारि ॥ विचारमाल वरनन करूं, मौनी जू उर धारि ॥ ३ ॥

टीका:—मैं अनाथ दास विचारमाला संज्ञक-ग्रंथकूं रचता हूं, क्या करके, आनंद कहिये सुखस्वरूप तिसकरि युत औ श्री कहिये सतस्वरूप तिसकरि युत औ देव कहिये प्रकाशरूप निर्गुण ब्रह्मकूं नमस्कार करके। ननु इहां श्रीयुतशब्दका सत्य अर्थ होवै, तो, श्रीनाम शोभाका है;तिसवाले आविद्यक पदार्थ सत्य कहे चाहिये? उत्तर:—विद्वान्की दृष्टिमैं अविद्या तत्कार्य सर्व असत है

यातैं श्रीयुतपदका सतही अर्थ है। औ मुरारि कहिये मुरनाम दैत्यके हंता जो सगुणब्रह्म, ताके चरणोंकूं नमस्कार करके। यद्यपि मुरारि संज्ञा वैकुंठवासी चतुर्भुज मूर्तिकी है तथापि सो मूर्ति सगुण ब्रह्मनैंही धारण करी है। जो जिज्ञासु या ग्रंथकूं हृदयमें धारण करे सो मौनी है वा इस पदका और अर्थ करनाः—मौनी जो हमारे गुरु हैं तिनका हृदयमें स्मरण करके ॥ ३ ॥

(३) किं मौन ? इस प्रश्नका अभिप्राय यह हैः— मौन चार प्रकारका है, बाणीका मौन [१] औ इंद्रियोंका [२] औ मानस [३] चतुर्थ ज्ञानमौन है [४] तिनमें कौन मौन तुमारे गुरोंने अंगीकार किया है तहां तुरीयपक्ष मानकर कहै हैंः—

दोहा--यह मैं मम यह नाहिं मम, सब विकल्पभै छीन॥ परमातम पूरन सकल, जानि मौनता लीन॥ ४॥

टीकाः--सकल कहिये अन्नमयादि पंचकोशनतैं परे जो आत्मा ताकूं पूरण कहिये ब्रह्मरूप जानकर. यह क-

हिये पंचकोशही मेरा स्वरूप है अथवा नहीं; यह पंच-कोश मम कहिये मेरा दृश्य है वा नहीं; इत्यादि विकल्प कहिये संशयोंकी निवृत्तिरूप मौन; ताकूं अंगीकार किया है । यामें श्रुतिप्रमाण है:–"तिस परब्रह्मके साक्षात्कार होया इस पुरुषकी हृदयग्रंथि औ सर्व संशय तथा सर्व-कर्म निवृत्त होवै हैं" ॥ ४ ॥

(४) "जितना काल पुरुष जीवे उतनेकाल गुरु, शास्त्र, ईश्वर, तीनोंकूं वंदना करे" यह शास्त्रमैं कहा है। यातैं कृतघ्नताकी निवृत्ति अर्थ गुरोंकी स्तुति करै हैं:–

दोहा--मात तात भ्राता सुहृद, इष्टदेव नृप प्रान ॥ अनाथ सुगुरु सबतें अधिक, दान ज्ञान विज्ञान ॥ ५ ॥

टीका:--अनाथदासजी कहे हैं:–परोक्ष प्रत्यक्ष ज्ञानके देनेवाले जो गुरु, सो माता, पिता, भ्राता, सुहृद कहिये प्रतिउपकारकूं न चाहकर उपकार करै, इष्टदेव कहिये अपने कुलकरके पूज्य देव विशेष, नृप औ अपने

प्राण इन सबतें अधिक है; माता आदि काहेते सर्व जन्मद्वारा सातिशय आदि अनेक दूषणकर दूषित जो विषयसुख ताके देनेवाले हैं औ गुरुज्ञानद्वारा निरतिशय जो मोक्षसुख, तिसके देनेवाले हैं. इति भावः ॥५॥

पुनः स्तुति कहै हैं:—

दोहा--प्रगट पुहमि गुरु सुरद्युति, जन मन नलिन प्रकाश ॥ अनाथ कुमोदनि विमुख जन, कबहु नहोत हुलास॥ ६ ॥

टीका:--अनाथदासजी कहै हैं:—सूर्यवत् प्रकाशतेहुए गुरु पृथ्वीतलमैं प्रसिद्ध हैं, क्या करके प्रकाशतेहुए? जिज्ञासु जनोंके हृदयरूप कमलोंको अपने वचनरूप किरणोंकर प्रफुल्लित करते हुए, अनधिकारी जनरूप जो कुमोदिनियां सो कभी आल्हादकूं पावैं नहीं। जैसें सूर्यके उदय हुएतैं उलूककों प्रकाश होवै नहीं तेसैं ॥ ६ ॥

अब गुरुकृत उपकारको अन्वय व्यतिरेकद्वारा दो दोहोंकरि, दिखावै हैं:—

दोहा–टेरत सद्गुरु मयाकरि, मोह नींद सोवंत ॥ जग्यो ज्ञानलोचन खुलै, सुपनो भ्रम बिसरंत ॥ ७ ॥

टीका:–कृपाकर गुरोंकें टेरत कहिये तत्त्वका उपदेश करतेही ज्ञान जग्यो कहिये स्वरूपज्ञान निरावरण भयो, जो मोह कहिये अज्ञानकरि आवृत था; इहां आवृतपदका अध्याहार है। यामैं गीतावचन प्रमाण है:– "अज्ञानकरि आवृत जो स्वरूपज्ञान तिसकर जीव मोहित होवै हैं" अब इसका फल कहै हैं:–भ्रम बिसरंत कहिये अहंकारादि अध्यासकी निवृत्ति होवै है। दृष्टांतः– जैसें निद्रासैं उठे पुरुषका नेत्रके खुलनेसैं स्वप्न अध्यास निवर्त होवै है ॥ ७ ॥

दोहा–गुरुबिन भ्रमलग भूसियो, भेदलहे बिन स्वान॥ केहरि बपु झांई निरखि, पऱ्यौ कूप अज्ञान ॥ ८ ॥

टीका:–गुरुकी प्राप्तिसैं विना अद्यपर्यंत भ्रमलग

कहिये भ्रमरूप शरीर दोमें अध्यास करके भूस्यो कहिये मैं जन्मता मरता हों, कर्ता भोक्ता हों, सुखी दुःखी हों, ऐसें अन्यथा बकता भया। दृष्टांतः—जैसे कूकर, शीसमहलमैं प्रविष्ट हुआ अपने प्रतिबिंबोंको आपसे भिन्न मानकर भूसें तैसे! अन्य दृष्टांतः—जैसे उन्मत्त सिंह, कूपजलमें अपने प्रतिबिंबोंको देखके अपने स्वरूपकूं न जानकर कूपमें गिरै तैसे ॥ ८ ॥

ननु ऐसे गुरु कहीं परोक्ष होवैंगे? यह शंकाकर कहै हैं:—

दोहा—प्रगट अवनि करुनारनव, रतन ज्ञान विज्ञान ॥ वचन लहरि तनुपरसतैं, अज्ञो होत सुजान ॥ ९ ॥

टीका:—करुणाके समुद्र गुरु पृथ्वीपर प्रगट हैं। समुद्रकी जो उपमा दई गुरोंको तामें हेतु कहे हैं:—लहरीस्थानापन्न वचनोंका तनु परसते कहिये श्रोत्रेंद्रियसे संबंध होतै हीं, रत्नस्थानापन्न ज्ञानविज्ञानद्वारा अज्ञो कहिये अज्ञानी जीव ते सुजान कहिये परमेश्वररूप होवैं हैं॥९॥

ननु गुरोंकी कृपातेही ज्ञानप्राप्ति होवै तो वैराग्यादि ज्ञानके साधनोंका कथन निष्फल होवैगा ? या शंकाके होयां कहै हैं:-

दोहा-सूर दरस आदरस ज्यों, होत अग्नि उद्योत ॥ तैसैं गुरुप्रसादतै, अनुभव निरमल होत ॥ १० ॥

टीका:-दृष्टांतः-जैसे रविके दर्शनते रविके प्रसादकर आदरसे कहिये आतशीमेंही अग्नि प्रगट होवै है, अन्यमें नहीं; तैसे गुरोंकी कृपाते निरमल कहिये संशय विपर्ययरूप मलसे रहित बोध, शिष्यके हृदयमेंही होवै है, अन्यके नहीं; औ साधनसंपन्नही शिष्य कहा है, यातैं साधन निष्फल नहीं ॥ १० ॥

ननु ऐसे होवै तो गुरु, विषम दृष्टिवान् होवैंगे ? या शंकाकों चंद्रदृष्टांतसे दूरि करै हैं:-

दोहा--जिमिचंदहि लहि चंद्रमनि, अमी द्रवत तत्काल॥गुरुमुख निरखत शिष्यके, अनुभव होत विशाल॥ ११ ॥

टीका:--दृष्टांतः--जैसैं चंद्रके प्रकाशकों पाइकर चंद्रकांतमणिही अमृतकों त्यागै है अन्य नहीं, सो कछू चंद्रमैं विषमता नहीं, काहेतैं चंद्र, समान सबकों प्रकाश करै है; तैसैं गुरोंके दर्शनतैं विशाल कहिये ब्रह्मबोध शिष्यकोंही होवै है अन्यकों नहीं, सो कछु गुरुमें विषमता नहीं; काहेतें गुरोंका दर्शन सर्वकों समान है ११

(५) ऐसे गुरोंकी शरणकूं प्राप्त होकर शिष्यको क्या करणीय है? इस आकांक्षाके होयां कहे हैंः--

शिष्यउवाचः--

दोहा--हौं सरनागत रावरे, श्रीगुरु दीनदयाल॥ कृपासिंधु वंदूं चरन, हरो कठिन उरसाल॥ १२॥

टीका:--हे श्रीगुरो! सर्व ओरतें निरास हो कर मैं दीन आपकी शरणकूं प्राप्त भया हों, जाते आप दीनदयालु हो औ आपके चरणोंकूं वंदन करता हूं! औ जातैं आप कृपासागर हो; यातें कठिन कहिये पीन जो मेरे हृदयमें साल कहिये दुःख है सो हरो॥ १२॥

(६) अब हृदयगत दुःखके हेतुकूं दिखावता हुआ, शिष्य कहे हैः—

दोहा—हौं अनाथ अतिसे दुःखी, डऱ्यो देखि संसार॥ बूड़तहौं भवसिंधुमें, मोहि करो प्रभु पार॥ १३॥

टीकाः—हे प्रभो! मैं अनाथ कहिये मेरा कोई रक्षक नहीं, औ अतिशयकर दुःखी हूं। काहेते, विषयसुखकूं मैंने त्याग्या है औ स्वरूपसुखको प्राप्त भया नहीं औ जन्ममरणरूप संसारजन्य दुःखका स्मरण कर भयभीत भया हों, ऐसे संसाररूप समुद्रमें डूबता जो मैं हों ता मुजकों पार कहिये संसारका पार जो परमेश्वर तहां प्राप्त करो॥ १३॥

पुनः हेतु अंतरको दिखावै हैः—

दोहा—आसा तृष्णा चिंत बहु, ए डायन घरमांहि॥ जीवन किहि विध होय मम, हृदे स्मृतीकूं खांहि॥ १४॥

टीकाः--आशा कहिये वांछित विषयकी निरंतर इच्छा, तृष्णा कहिये विषयकी प्राप्तिसैं अतृप्त वृत्ति, चिंता बहु कहिये अप्राप्त विषयके साधनका चिंतनरूप औ प्राप्त विषयकी रक्षाका चिंतनरूप वृत्ति, यह त्रितय वृत्तिरूप जो डायन, अंतःकरणमें एक कालमै एकही वृत्तिकी न्यांई उदय होवै है यातैं त्रितयवृत्तिरूप एक डायन कही, याके विद्यमान होयां मम जीवन कहिये मेरी ब्रह्मरूपकरि स्थिति, किसप्रकार होवै ! अर्थात् किसी रीतिसैं नहीं होवै, काहेतैं स्थितिका साधन जो निरंतर तत्त्वानुसंधानरूप स्मृति ताकूं खाय कहिये ताकी विरोधी है ॥ १४ ॥

दोहा--कबहूं सुमति प्रकाश चित, कबहूं कुमति अधीन ॥ बिबनारीके कंतज्यों, रहत सदा अति दीन ॥ १५ ॥

टीकाः--दृष्टांतः--जैसैं परस्पर विरोधिनी उभय स्त्रियोंकर जीत्या पुरुष निरंतर दुःखी रहता है; तैसैं मेंबी चित्त कहिये अंतःकरणमें कदाचित् शुभनिश्चयरूप

वृत्ति औ कदाचित् अशुभनिश्चयरूप वृत्ति तिनमें तादात्म्य अध्यासकर दुःखी रहता हूं ॥ १५ ॥

(७) अब शिष्य, स्वनिष्ठ आसुरी गुणोंकूं नदीरूपकर वरनन करता हुआ दुःखके हेतुकूं कहे हैं:—

दोहा—नदि आसा शुभ अशुभ तट, भरी मनोरथ नीर ॥ तृष्णा अमित तरंग जिहिं, भरम भमर गंभीर ॥ १६ ॥

टीका:—पूर्वोक्त आशारूप नदी है, जिसमें डूबता है औ अविचारपूर्वक शुभाशुभक्रिया जाके किनारे हैं, भूत औ भावी पदार्थोंकूं विषय करनेवाले मनोराज्यरूप जलकर पूर्ण है, पूर्वोक्त तृष्णारूप अमित जिसमैं लहरी हैं औ आत्मतत्त्वके अभाववाले अहंकारादिकोंमें आत्मतत्त्वकी प्रतीतिरूप भ्रम, सोई जामैं भमर कहिये आवर्त हैं ॥ १६ ॥

दोहा—रागादिक जलजंतु बहु, चिंता प्रबल प्रवाह ॥ धृति तरु हरनी तरन तिहिं, बेधत मो मन आह ॥ १७ ॥

टीका:—जामैं राग कहिये प्रीति औ द्वेषरूप मत्स्यकूर्मादि जलजीव हैं औ पूर्वउक्त चिंतारूप अति वेगवाली धारा है औ एकांत स्थानमैं विषयकी प्राप्तिसैं चित्तकी अविकारिकारूप धीरज सोई भया तरु तिसके हरनेमैं तरुण कहिये समर्थ है, ता नदीने मेरे मनको वेधित कहिये पीडित किया है ॥ १७ ॥

पुनः वही कहै हैं:—

दोहा—प्रबल युगल शुभ अशुभ गज, भिरत सुरोस बढ़ाय ॥ अपनी भूल अनाथ हौं, पऱ्यो मध्य तिहिं आय ॥१८॥

टीका:—दृष्टांतः—जैसैं अतिबलवाले दो हस्ती क्रोधपूर्वक परस्पर युद्ध करते होवैं तिनमैं प्रवेश कर पुरुष दुःखकूं अनुभव करै, तैसे अपनी भूल कहिये अपने ब्रह्मात्मभावको न जानकर शुभ अशुभ संकल्पोंमैं तादात्म्य अध्यास करिके हौं अनाथ कहिये मैं दीन भया हौं॥१८॥

(८) अब स्वमनगत चंचलताकूं दुःखका हेतु शिष्य दिखावै है:—

दोहा–कबहुँ न मन थिरता गही, समझायो मैं पोत ॥ जैसे मरकट वृच्छपर, कबी न ठाढ़ो होत॥ १९ ॥

टीका:–दृष्टांतः–जैसे बाजीगरकर शिक्षित भयाभी बंदर वृक्षपर आरूढ होकर निष्कंप रहे नहीं; तैसे पुनः पुनः चित्तकी एकाग्रताका यत्नभी किया तथापि मेरा मन एकाग्रताको न भजता भया ॥ १९ ॥

दोहा–चलदलपत्र पताकपट, दामिनि कच्छपमाथ ॥ भूतदीप दीपक शिखा, यों मनवृत्ति अनाथ ॥ २० ॥

टीका:–चलदल नाम पिप्पल वृक्षका है। यह षट् पदार्थ जैसे स्वभावसे चंचल हैं तैसे मेरे चित्तकी वृत्ति स्वभावसे चंचल है। अन्य स्पष्ट ॥ २० ॥

स्वभावसे चित्तकी विषयोंमें प्रवृत्तिभी दुःखकी हेतु है, या अर्थको शिष्य दिखावै है:–

दोहा-सहज स्वभाव अकासकूं, पावक झरप चलंत ॥ चंचल स्वतः अनादिको, मन रति विषय करंत ॥ २१ ॥

टीका:-जैसे साथ उत्पन्न होनेवाले स्वभावसे पावककी झरप कहिये लाट, ऊर्ध्वको जावै है; तैसे स्वरूपसे अनादिकालका चंचल जो मन, सो भोग्य अभोग्य जो शब्दादि विषय तिनमें स्वभावसे प्रीति करै है ॥ २१ ॥

(९) अब चंचलताके हेतु जो संदेह, तिनको दिखावै हैं:-

दोहा-जग सांचो मिथ्या किधौं, ग्रह्यो तज्यो नहिं जात ॥ ग्रही चछुंदर सर्प ज्यों, उगलत बनत न खात ॥ २२ ॥

टीका:-जगत् सत्य है वा मिथ्या है? मिथ्या है तोभी आपते उत्पन्न होवै है वा किसी अन्यकर? अन्य भी किसी जीवकृत है वा ईश्वरकृत है? ईश्वरकृत जो

होवै तोभी किसीका निवर्त हुआ है वा नहीं हुआ ? निवर्तभी पुनः प्रतीत होवै है वा नहीं ? इत्यादि संशयरूप हेतुतैं हेयउपादेयरूपकर निश्चित होवै नहीं;यातेभी क्लेशही है। दृष्टांतः—जैसे चचूंदर कहिये दुर्गंधविशिष्ट मूषक सदृश जीवविशेष, ताकूं सर्प, मुखमें ग्रहण करके पुनः ग्रहण त्यागमें अशक्त हुआ दुःखी होवै है तैसे॥२२॥

(१०) पूर्व शिष्यने करे जो प्रश्न, तिनका क्रमसे गुरु समाधान करै हैंः—श्रीगुरुरुवाच.

दोहा—समाधान गुरु करत हैं, दयायुक्त कहि बोल ॥ मम वचननमें आन तूं, आपत वाक्य अडोल ॥ २३ ॥

टीकाः—ग्रंथकार उक्तिः—गुरु, शिष्यके प्रश्नोंका उत्तर कहै हैं, क्या करके, दयादृष्टिपूर्वक वचन कह करके, गुरुउक्तिः—हे शिष्य ! मेरे वचनोंमें तूं विश्वास कर, काहेते गीतामें भगवानने कहा हैः—" श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् " कैसे वाक्य हैं ? आपत वाक्य कहिये

वेदवाक्य हैं, काहेते "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मरूप है याते ताकी वाणी वेदरूप है औ किसी प्रतिवादीकर खंडन नहीं हो सकते, याते अडोल हैं ॥२३॥

(११) पूर्व, शिष्यने कहा जो मेरा मन चंचल है या शिष्यकी उक्तिका अनुमोदन करते हुए गुरु चंचलताकी निवृत्तिका उपाय कहे हैं:-

दोहा-निःसंशय मन है चपल, दुष्कर गति अति आहि॥ गुरु श्रुतिशुद्ध अभ्यास कर, निश्चल कीजत ताहि॥ २४ ॥

टीकाः-हे शिष्य ! तैंने जो कहा मन चंचल है औ अतिशय दुःखके करनेवाली है गति कहिये प्रवृत्ति जिसकी, यामें संदेह नहीं; तथापि गुरुमुखात् श्रुतिशुद्ध कहिये श्रुतिप्रतिपाद्य जीव ब्रह्मका अभेदरूप अर्थ, तिसका श्रवण करके पुनः पुनः चिंतनरूप अभ्यास कर, तिसी अर्थमें तिस चित्तकी स्थिति कर सो मन निश्चल करिये है। इत्यर्थः ॥ २४ ॥

(१२) अब सुगम उपायके जाननेकी इच्छा चित्तमें धारकर अभ्यासमें अपने अनधिकारको प्रकट करता हुआ शिष्य, प्रार्थना करै हैः—शिष्य उवाच.

दोहा—हौं विषयी अति अजित मन, नाहि न होत अभ्यास ॥ ताते प्रभु तुम पद सरन, हरहु कठिन जग त्रास ॥ २५ ॥

टीकाः—हे प्रभो ! आपने जो अभ्यास बताया सो मेरेसे नहीं होता है! काहेते अभ्यास निर्विषय औ जितचित्त पुरुषसे होवै है, मैं विषयासक्त औ अति अजित चित्त हूं, ताते आपके चरणोंकी शरण हूं, आप सुगम उपाय बतायकर जन्मादि मृत्युपर्यंत जो जगतजन्य दुःखकी स्मृति, तिसतैं उत्पन्न भया जो कठिन त्रास कहिये पीनभय, ताके निर्वत्तक हो इत्यर्थः ॥ २५ ॥

(१३) अब शिष्यकी उक्तिका अनुवाद करते हुए गुरु, सुगम उपाय कहै हैंः—श्रीगुरुरुवाच.

दोहा—सुन शिष्य उत्तम सीषको, जो त्वा-

हत निजश्रेय ॥ जग बंधन इच्छित मुच्यो, तौ सतसंग करेय ॥ २६ ॥

टीकाः—हे शिष्य! जो पुरुष निजश्रेय कहिये स्वस्वरूप सुखके जानबेकी इच्छा करते हैं औ अविद्या तत्कार्य जगत्‌रूप बंधकी मुच्यो इच्छित कहिये निवृत्तिकी इच्छा करै हैं, सो उत्तम सीख कहिये महावाक्यका उपदेश, ताको सुन कहिये श्रवण करके कृतार्थ होवे हैं; औ तू आपको यामें असमर्थ देखता है तो सतसंग करेय कहिये सज्जनोंका संग कर ॥ २६ ॥

दोहा—गहै चचूंदर अहि मरे, तजै दृगनकी हान ॥ जल पाये सुख होत है, नर सतसंग प्रमान ॥ २७ ॥

(१४) ग्रंथकार उक्तिः

सो०—श्रीगुरु दीनदयाल, असरन सरन उदार अति ॥ जन अनाथ उरसाल, कृपा करत चाहत हऱ्यो ॥ २८ ॥

टीकाः—अनाथदासजी कहै हैं:—जन कहिये शिष्यके हृदयमें शाल कहिये दुःख ताकूं गुरु कृपाकर निवृत्त किया चाहते हैं,काहेते दीन पुरुषोंमें दयालु हैं औ अशरण कहिये सर्व ओरतैं निरास जो जिज्ञासु तिनकी शरण कहिये आसरा हैं औ आत्मरूप धनके दाता हैं, यातैं अति उदार हैं ॥ २८ ॥

दोहा—प्रथम शिष्यसंदेह कहि, भयो सु आप अदृष्ट॥सुख दुखकर साक्षात जिम, होहिं सुदृष्ट अदृष्ट ॥ १ ॥

इति श्रीविचारमालायां शिष्यआशंकावर्णन नाम प्रथमो विश्रामः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ संतमहिमावर्णनं नाम

द्वितीयविश्रामप्रारंभः ॥ २ ॥

सतसंगकी इच्छावाला हुआ शिष्य संतोंके लक्षणकूं पूछे है:—शिष्य उवाच.

दोहा—कहो कृपाकरि साधुके,लच्छन श्री

गुरुदेव ॥ जाहि निरखि हित आपनो, करौं भलीविध सेव ॥ १ ॥

टीका:—हे श्रीगुरो ! कृपा करके साधुके लक्षण कहो, काहेतैं? जाहि निरख कहिये जिन लक्षणोंकों माहात्माओंमें देखकर अपने हित कहिये कल्याणके अर्थ भली प्रकारसैं तिनके सेवादि करूं ॥ १ ॥

(१५) साधुलक्षणवर्णनं श्रीगुरुरुवाच.

दोहा—अतिकृपालु नहि द्रोह चित, सहनशीलता सार ॥ शम दम आदि अकाम मति, मृदुल सर्व उपकार ॥ २ ॥

टीका:—अति कृपालु कहिये प्रयोजन विना कृपा करै हैं, यातैंही अद्रोहचित्त कहिये चित्तकर किसीसैं द्वेष नहीं करते। पुनः कैसे हैं:—सहनशील कहिये मानअपमानादि द्वंद्वोंके संहारनेवाले हैं, सहनशील स्वभावही सार कहिये श्रेष्ठ है यह जाने हैं औ शम कहिये मनका निग्रह, दम कहिये चक्षुरादि इंद्रियोंका निग्रह,

आदिपद करकै उपरति आदिकोंका ग्रहण करणा, तिनोवाले हैं । ननु शम दम आदि मुक्ति इच्छु मुमुक्षुके लक्षण कहे हैं, विद्वान्के नहीं ? ऐसे मत कहोः— काहेतैं अकाममति कहिये अंतःकरणमैं हेयउपादेयकी इच्छातैं रहित हैं औ मृदुल कहिये कोमल स्वभाव हैं, या सर्व उपकार कहिये शरणागतोंका योगक्षेम करे हैं । योगक्षेम नाम अप्राप्तकी प्राप्ति औ प्राप्तकी रक्षाका है ॥ २ ॥

पुनः संतलक्षण.

दोहा—आतमवित जु अनीह शुचि, निष्किंचन गंभीर ॥ अप्रमत्त मत्सररहित, मुनि तपसांत सुधीर ॥ ३ ॥

टीकाः—आतमवित कहिये अन्वयव्यतिरेकयुक्तिकर पंचकोश औ त्रिते शरीरोंतैं भिन्न, त्रिते अवस्थाका प्रकाशक, चिन्मात्र आत्मा, जिनोंने जान्या है । सो अन्वय व्यतिरेकरूप युक्ति यह हैः—स्वप्न अवस्थामैं स्वप्न

साक्षीरूपकर जो आत्माका भान सो आत्माका अन्वय (मालामें सूतकी न्यांई अनुवृत्ति) है, आत्माके भान भये जो स्थूलदेहका अभान सो स्थूलदेहका व्यतिरेक (मणिकेकी न्यांई व्यावृत्ति) है, औ सुषुप्तिमें ता अवस्थाके साक्षीरूपताकर आत्माकी प्रतीति सो आत्माका अन्वय है औ लिंगदेहका अभान सो लिंगदेहका व्यतिरेक है औ समाधिमें सुखस्वरूपकर जो आत्माका भान सो आत्माका अन्वय है औ अविद्यारूप कारणदेहकी अप्रतीति सो कारणदेहका व्यतिरेक है। यातें त्रिते शरीरोंतें आत्मा भिन्न है। पंचकोश त्रिते शरीरोंके अंतर्गत हैं, यातें कोशोंतें भिन्न विवेचन नहीं किया। इहां प्रमाणः—"त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत्॥ तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः [१] तीन धामरूप तीन अवस्थाओंमें जो भोगके कारण हैं औ भोक्ता है औ भोग है, तिनतें विलक्षण साक्षी चिन्मात्र सदाशिव मैं हूं" पुनः संत कैसे हैं? अनीह कहिये व्यर्थ चेष्टासैं रहित हैं, शुचि

कहिये अंतरराग द्वेषरूप मलतैं रहित हैं औ बाह्य जल मृत्तिकादिकोंकर शुद्ध रहे हैं, निष्किंचन कहिये बाह्य संग्रहतैं रहित हैं, गंभीर कहिये अन्यकर अज्ञात आशय हैं, अप्रमत्त कहिये प्रमादसैं रहित हैं, मत्सर कहिये बखीली (ईर्षा) तासैं रहित हैं, मुनि कहिये मननशील; तपःशांत कहिये शांतिरूपही जिनका तप है इहां प्रमाणः– श्लोक.

शान्तेः समं तपो नास्ति संतोषान्न परं सुखम् ॥ तृष्णाया न परो व्याधिर्न धर्मो दयया परः ॥ १ ॥

फिर कैसे हैंः–सुधीर कहिये सुष्ठु धैर्यवान् हैं ॥ ३ ॥

पुनः वही कहे हैंः–

दोहा–जित षट्गुन धृति मान कवि, मानद आप अमान ॥ सत्यप्रीति अनीतगति, करुणाशीलनिधान ॥ ४ ॥

टीकाः–षट्गुण कहिये षड्उरमी, तिनोंके धृत क-

हिये धारणेवाले जो देह प्राण मन सो जीते हैं, मान कहिये वेदरूप प्रमाण तामैं कवि कहिये तात्पर्य रूपकर सर्व अर्थके जाननेवाले हैं, मानद कहिये व्यवहारदशा-मैं स्वभिन्न सर्वकों मान देवै हैं औ अपमान नहीं चाहे हैं औ सत्यसंभाषणमैं निश्चय हैं काहेतें ? सत्यमूलकही सर्व धर्म हैं ऐसे जाने हैं, मिथ्या संभाषण जिनतैं दूर भया है, करुणारूप जो शील कहिये आचार ताके नि-धान कहिये खानी हैं, काहेतें पामर औ विषयी औ जिज्ञा-सु जो पुरुष, तिन सर्वपर कृपा करै हैं । इति भावः ॥४॥

पुनः वही कहै हैं:—

दोहा—उस्तुति निंदा मित्र रिपु, सुख दुख ऊंच रु नीच ॥ ब्रह्म तृण अमृत गरल, कंचन काच न बीच ॥ ५ ॥

टीका:—स्तुति कहिये स्वनिष्ठ गुणोंका अन्यकर परिकथन तथा स्वनिष्ठ अवगुणोंका अन्यकर परिकथ-नरूप निंदा औ प्रतिउपकार कर्ता मित्र तथा आपणे-

पर अपकार कर्तारूप शत्रु औ पुण्यवशतैं इष्ट पदार्थके संबंधकर अंतःकरणके सत्वका परिणाम हर्ष वृत्तिरूप सुख तथा प्रतिकूल पदार्थके संबंधकर अंतःकरणके रजोगुणका परिणाम विक्षिप्तवृत्तिरूप दुःख औ जातिगुण आयुकर आपणेसै अधिक जो ऊंच तथा जातिगुण आयुकर आपणेसै नीच, ब्रह्मा औ तृण तथा अमृत औ विष तथा कंचन औ काच कहिये काच विशेष; इत्यादिक सर्व पदार्थोंमें यद्यपि लौकिक दृष्टिसै विषमता प्रतीत होवै है तथापि वे मनकृत होणेतें मिथ्या हैं औ शास्त्रीय दृष्टिसैं सर्व पदार्थोंमे अनात्मत्व तुल्य है औ ज्ञान निवर्त्यत्वभी तुल्यही है ॥ ५ ॥

दोहा–समदर्शी शीतलहृदय, गत उद्वेग उदार॥ सूछम चित्त सुमित्र जग, चिद्वपु निरहंकार ॥ ६ ॥

टीकाः–यातैं तिनमैं महात्मा समदर्शी हैं, इसीतैं शीतल हृदय हैं, गत कहिये निवृत्त भया है उद्वेग कहिये

क्षोभ जिनतैं, त्यक्त वस्तुका पुनः ग्रहण करैं नहीं यातैं उदार हैं, सूक्ष्म ब्रह्मकूं विषय करणेतैं सूक्ष्म चित्तवाले हैं। सो श्रुतिने कहा है:—"दृश्यते त्वग्र्यया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः। अस्यार्थः—सूक्ष्मदर्शीयोंने शास्त्रसंस्कारसहित शुद्ध औ सूक्ष्म बुद्धिकर ब्रह्म देखीता है कहिये निरावरण करीता है"। औ फिर कैसे हैं? जगतके सुष्ठु मित्र हैं काहेतें? सर्वप्राणियौंमै निरहेतुक प्रीति करै हैं, औ चिद्वपु कहिये चेतनही है शरीर जिनोंका औ देह आदिकोंमैं परिच्छिन्न अहंकारतें रहित हैं ॥ ६ ॥

पुनः वही कहै हैं.

दोहा—सर्व मित्र निष्कल्पमन, त्यागी अति संतोष ॥ ऐश्वर्य विज्ञान बल, जानत बंध रु मोष ॥ ७॥

टीका:—सर्व मित्र कहिये सर्व प्राणी जिनके मित्र हैं काहेतैं सर्वकरं आत्मा होनेतैं औ कल्पनातैं रहित चित्त हैं औ अतित्यागी हैं काहेतैं धन दारा आदिकोंका

त्याग अतिसुगम हैं औ अनात्मामैं आत्म अध्यासका त्याग अतिदुष्कर है सो जिनोंने कीया है यातैं औ यथालाभकर संतुष्ट हैं, अणिमादि सिद्धिरूप ऐश्वर्यकर संपन्न हैं औ विज्ञानके बलकर इस रीतिसें जाने हैंः—जैसे अहंकारादिकोंकी प्रतीतिरूप बंध आत्मा मैं मिथ्या है तैसैं तिसकी निवृत्तिरूप मोक्षभी मिथ्या है, काहेतैं श्रुति कहती हैः—"न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ॥ न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ १ ॥" अस्यार्थः—" निरोध नाश, उत्पत्ति, देहसंबंध, बद्ध सुख दुःख धर्मवान, साधक श्रवणादि करनेवाला, मुमुक्षु साधनचतुष्टयसंपन्न, मुक्त अविद्यारहित, ये संपूर्ण वास्तव नहीं हैं " ॥ ७ ॥

दोहा—तनु मतिगति आनंदमय, गुणातीत निष्प्रेह॥ विगत क्लेश स्वच्छंदमति, संतां भूषण एह ॥ ८ ॥

टीकाः—मतिगति कहिये बुद्धिवृत्ति तनु कहिये सू-

क्ष है जिनोंकी औ आनंदाकार होनेतैं आनंदरूप हैं; कैसा आनंद है? सत्वादि तीन गुणोतैं परे हैं, याही ते निष्प्रेह कहिये अन्यविषयकी इच्छातैं रहित हैं। सो महिम्नमें कहा हैः-" नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति" " अपने आत्मामैं आरामी पुरुषकूं यह मृगतृ- ष्णाकी न्याई जो शब्दादिक विषय सो भ्रमावै नहीं "औ अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष अभिनिवेशरूप पंच क्लेशतैं रहित हैं। अविद्या द्विधा हैः-एक कारण अविद्या है, अपर कार्य अविद्या है. इहां अविद्या शब्दकर कार्य अ- विद्याका ग्रहण है; सो चार प्रकारकी हैः-अनित्यमें नि- त्यबुद्धि, दुःखमें सुखबुद्धि, अशुचिमें शुचिबुद्धि औ अ- नात्मामें आत्मबुद्धि, अनित्य जो ब्रह्मादि लोक तिनमें नित्यबुद्धि [१] दुःखका साधन होनेतैं दुःखरूप जो कृषि वाणिज्यादि तिनमें सुखबुद्धि (२) अशुचि जो पुत्र स्त्री आदिकोंके शरीर तिनमैं शुचिबुद्धि [३] अ- नात्मा जो अपना शरीर तामैं मुख्य आत्मबुद्धि [४] यह अविद्या है औ अस्मिता नाम सूक्ष्म अहंकार, राग नाम प्रीति, द्वेष नाम विरोध, अभिनिवेश नाम अति

आग्रह, इन पंच क्लेशनतें रहित हैं । पुनः अकुंठित बुद्धि हैं, अर्थात् तम रजो करके जिनकी बुद्धि रुकती नहीं । अब प्रकरणको समाप्त करते हुए गुरु कहे हैंः—हे शिष्य ! पूर्वोक्त लक्षण संतोंके हैं ॥ ८ ॥

(१६) हे भगवन् ! संतोंके एतावन्मात्रही लक्षण हैं ? या आकांक्षाके भये अन्यभी हैं यह कहे हैंः—

दोहा—स्वसंवेद्य नहि कहि सकों, लच्छन संत महंत ॥ परसंवेद्य कहे कछु, संगप्रताप कहंत ॥ ९ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! महानुभाव जो संत हैं तिनके दो प्रकारके लक्षण हैंः—एक स्वसंवेद्य हैं, अपर परसंवेद्य हैं। अन्य करके जो जाने जावैं सो परसंवेद्य कहिये हैं; आपकर जो जाने जावैं सो स्वसंवेद्य कहिये हैं, सो कौन हैं? या आकांक्षाके हुए कहे हैंः—मृत्युके समीप स्थित भया भी चित्तमें भय न होवै औ चिज्जड ग्रंथिकी निवृत्ति औ निरावरण स्वरूपानंदकी उपलब्धि इत्यादिक

जो स्वसंवेद्य लक्षण हैं सो हम कही नहीं सकते, शेष जो परसंवेद्य लक्षण हैं सो स्वल्पसें हमने कहे हैं। अब सतसंगका माहात्म्य कहै हैं, श्रवण कर ॥ ९ ॥

(१७) अब विश्रामकी समाप्तिपर्यंत फलकथनद्वारा सतसंगका माहात्म्य कहे हैं:—

दोहा—सत्संगति निजकल्पतरु, सकल कामना देत ॥ अमृतरूपी वचन कहि, तिहूं ताप हरिलेत ॥ १० ॥

टीका:—वांछित फलप्रद होनेतैं सतसंगही कल्पवृक्ष है, जातैं सकल पुरुष कीयां इस लोकके धन यशादि पदार्थकूं विषय करणेवालीयां औ परलोकके स्वर्ग सुखादिकोंकूं विषय करणेवालीयां सकल कामना पूर्ण करै है। निष्काम पुरुषके अमृतकी न्याई मधुर वचन कहि करि ज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा अध्यात्म अधिभूत अधिदैव तीन ताप दूर करै है। क्षुधा आदिकतैं जो दुःख होवै सो अध्यात्म कहिये है। चोर व्याघ्र सर्पादिकोंतैं जो दुःख

होवै सो अधिभूत कहिये है । यक्ष राक्षस प्रेत ग्रहादिक औ शीत वात आतपतैं जो दुःख होवै सो अधिदैव कहिये है ॥ १० ॥

दोहा–पदवंदन तन अघ हरण, तीरथ-मय पद दोय ॥ संभाषण चित शांत कर, कृपा परम पद होय ॥ ११ ॥

टीका:–संतचरणोंके ताईं जो वंदन सो शरीरनिष्ठ संचित पापनकों हरे है, काहेतैं? संतचरणोंकूं तीर्थरूप होनेतैं; सोई भगवान्‌ने एकादशमें कहा है:–" सात्विक गुणधारी नरदेहा, शुद्ध करों ता चरणन खेहा" पुनः बोलणा जिनका चित्तकूं शांत करै है औ जिनकी कृपासै परमपदकी प्राप्ति होवे है, सोई कहा है:–"ज्ञानं विना मुक्तिपदं लभते गुर्वनुग्रहात् " ॥ ११ ॥

अब शिष्य पूछे है:–हे भगवन् ! संतसंगमें सुख कितनाक है ? तहां गुरु कहे हैं:–

दोहा–संतसंगति सुखसिंधुवर, मुक्ता नि-

जकैवल्य॥आशय परम अगाध अति,
पैठे मनदल मल्य ॥ १२ ॥

टीका:–हे शिष्य! सतसंग सुखका समुद्र है, महात्मा-का जो आशय कहिये गूढ अभिप्राय है सो तिसमें गंभीरता है, जीतिया है मन जिनोंनैं सो पुरुष ऐसे समुद्रमें प्रवेश करके कैवल्य मोक्षरूप मोतीकूं पावै हैं ॥ १२ ॥

(१८) अब शिष्य पूछे हैः–हे गुरो! इतने सुख मैंने वेदमैं श्रवण करे हैं:–समग्र पृथ्वीसुखकी चक्रवर्ती राजामै समाप्ति है, चक्रवर्तीतैं सोगुन अधिक सुख मानव गंधर्वोंका है, तिनतैं शतगुणाधिक देव गंधर्वोंका है, तिनतैं शतगुणाधिक पितृदेवनका है, तिनतैं शतगुणाधिक सुख आजानदेवनका है, तिनतैं शतगुणाधिक कर्मदेवनका है, तिनतैं शतगुण अधिक मुख्य देवनका है, तिनतैं शतगुण अधिक इंद्रका है, इंद्रतैं शतगुण अधिक देवगुरु बृहस्पतिका है, तिसतैं शतगुण अधिक प्रजापति (विराट्)का है, प्रजापतितैं शतगुण अधिक सुख ब्रह्मा (हिरण्यगर्भ) का है, तिनतैं अपार मोक्ष सुख है। सतसंगजन्यसुख कि-

स सुखके तुल्य है यह आप कहो? या आकांक्षाके होयां इन संपूर्णातें अधिक है, यह गुरु कहे हैः—

दोहा—सतसंगति सुख पलक जो, मुक्ति न तास समान॥ब्रह्मादिक इंद्रादि भू, निपट अल्प ये जान॥ १३॥

टीकाः—हे शिष्य! पलमात्र सतसंगजन्य जो सुख है तिसके समान मोक्षसुखभी नहीं तो ब्रह्मादिकोंका औ इंद्रादिकोंका औ कहिये चक्रवर्तीका सुख तो अतितुच्छ है, तिसके समान कैसैं होवै, ऐसे जान. ननु परतंत्र औ परिच्छिन्न औ कदाचित् होनेवाला ऐसा जो सतसंगजन्य सुख, तिसके समान सर्व वेदांतोंकर प्रतिपाद्य निरतिशय मोक्षसुख नहीं है, यह कथन असंगत है? तहां सुनोः—सफल पदार्थ स्तुतिके योग्य होवै है, निष्फल पदार्थ स्तुतिके योग्य होवै नहीं; मोक्षसैं मोक्षांतर होवै नहीं, यातैं निष्फल है औ सतसंगसैं ज्ञानद्वारा अनेक पुरुषोंकूं मोक्ष

प्राप्त होवै है यातैं वह सफल है, इस अभिप्रायसैं मोक्षतैं अधिक कहा है ॥ १३ ॥

(१९) अब शिष्य कहे हैः—हे भगवन् ! जगत् अनर्थरूप जो पासी तिसकी निवृत्ति अर्थ अनेक कर्मका अनुष्ठान मैंने कियाबी है तथापि निवृत्ति न भयी, यातैं आप कोई अन्य उपाय कहो ? या आकांक्षाके होयां शिष्यकी उक्तिका अनुवाद करते हुए गुरु कहै हैः—

दोहा--जगत मोहपासी अजर,कटे न आन उपाय ॥ जो नित सतसंगत करत,सहज मुक्त हो जाय ॥ १४ ॥

टीकाः--जगत् मोह कहिये अविद्या तत्कार्यरूप पासी सो यद्यपि अजर हैं औ अन्य कर्म उपासनारूप उपायकर निवृत्त नहीं होवै है तथापि जो पुरुष निरंतर सत्संग करता है सो सत्संगसैं ज्ञानद्वारा अनायासतैं ता पासीतैं मुक्त होवै है ॥ १४ ॥

अब शिष्य कहै हैः–सतसंगतैं ज्ञानद्वारा मोक्ष प्राप्त होवै है यह आपने कहा सो मैंने निश्चय किया, और धर्मादि जो तीन सो सतसंगसैं प्राप्त होवै हैं वा नहीं यह कहो ? तहां गुरु कहै हैः–

दोहा–कामधेनु अरु कल्पतरु, जो सेवत फल होय ॥ सतसंगति छिन एकमैं, प्रानी पावै सोय ॥ १५ ॥

टीकाः–हे शिष्य ! कामधेनु अरु कल्पतरुके चिरकालपर्यंत सेवन कीये तैं जो धर्म अर्थ कामरूप फल प्राप्त होवै है, सो फल सतसंगमैं प्राप्त जो पुरुष सो एक छिनमैं पावै है ॥ १५ ॥

पुनः शिष्य कहै हैः–हे गुरो ! कल्पवृक्ष अरु कामधेनु यद्यपि बहुकाल सेवन कीयेतैं फल देवै है, यातैं सतसंगके तुल्य नहीं, परंतु पारसमणि तो तत्काल फलप्रद होनेतैं सतसंगके तुल्य होवैगा ? या आक्षेपके भयां कहै हैः–

दोहा—पारसमैं अरु संतमैं, बड़ो अंतरो जान ॥ वह लोहा कंचन करै, यह करे आपसमान ॥ १६ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! पारसमैं अरु संतमैं बड़ी विषमता है ऐसे जान तूं, काहेतैं वह जो पारस है सो लोहकूं कंचन तो करे है परंतु पारस नहीं करसके है औ महात्मा जो हैं सो जैसैं आप ब्रह्मरूप हैं तैसैं जिज्ञासुकूं ब्रह्मरूप करे हैं; यातैं पारसतें अधिक हैं ॥ १६ ॥

शिष्य कहैं हैः—हे भगवन् ! सत्संगकी प्राप्तिअर्थ जो क्रिया है ताकरभी कछु फल होवै है। नवा ? तहां गुरु कहै हैंः—

दोहा—विधिवत यज्ञ करत सदा, जे द्विज उत्तम गोत ॥ साधुनिकट चलिजातहीं, सो फल पग पग होत ॥ १७ ॥

टीकाः—जौनसे पौलस्त्यादि गोत्रवाले उत्तम द्विज कहिये अष्ट वर्षतैं पूर्व जिनका यज्ञोपवीतरूप संस्कार

भया है ऐसे ब्राह्मण, जो वेदकी आज्ञापूर्वक सदा यज्ञ कहिये नित्याग्निहोत्ररूप यज्ञ करै हैं, तिसका जो फल शास्त्रमें कहा है, सो साधुके समीप गमन करतेहुए एक एक चरण पृथ्वीपर धारणकर होवैं है ॥ १७ ॥

दोहा–दया आदि दे धर्म सब, जप तप संयम दान ॥ जो प्राप्ती इन सबनतैं, सो सत्संग प्रमान ॥ १८ ॥

टीका:–जप कहिये गायत्री औ प्रणवादिकौंका यथाविधि पुनः पुनः उच्चारणरूप, तप कहिये स्वधर्मका अनुष्ठानरूप, संयम कहिये निषिद्ध औ उदासीन क्रियातैं कर्मेंद्रियोंका निरोधरूप, दान कहिये प्रतिदिन द्रव्यादिकोंको परित्याग, एतद्रूप सर्व धर्मोंके कीये जो फल प्राप्त होवै है सो सत्संगतैं प्राप्त भया जान। काहेतैं दयाआदि सर्व धर्मोंकी प्राप्ति सत्संगतैं होवै है ॥ १८ ॥

(२०) अब शिष्य कहे हैः–हे भगवन् ! अंतःकरणकी शुद्धिअर्थ सत्संगभिन्न तीर्थोंका सेवन कर्तव्य है? या आकांक्षाके होयां कहै हैं:–

दोहा—तीरथ गंगादिक सबै, करि निश्च-य सेवै जु ॥ सो केवल सतसंगमै, प्रानी फल लेवै जु ॥ १९ ॥

टीका:—अंतःकरणकी शुद्धिकी इच्छा करके गंगादि तीर्थोंका सेवन कियेसैं जो फल प्राप्त होवै है, सो अंतःकरणकी शुद्धिरूप फल सत्संग करणे मात्रसैं यह पुरुष पावे है ॥ १९ ॥

(२१) हे भगवन् ! चित्तकी एकाग्रता अर्थ तो हिरण्यगर्भादि देवनकी उपासना करणीय है ? तहां गुरु कहै हैं:—

दोहा—ब्रह्मादिक देवा सकल, तिन भजि जो फल होत ॥ सत्संगतमैं सहजही, वेगहिं होत उद्योत ॥ २० ॥

टीका:—हिरण्यगर्भसैं आदि लेकर देवनकी उपासनातैं चित्तकी एकाग्रतारूप फल होवै है, सो चित्तकी एकाग्रतारूप फल सत्संगमैं अनायासतैं उदय होवै है२०

(२२) पुनः शिष्य कहै हैः-ब्रह्म आत्माके अभेदअर्थ बहु विद्याका अध्ययन कर्तव्य है? या शंकाके होयां कहे हैंः-

दोहा-वेदादिक विद्या सबै, पावै पढ़ै जु कोय ॥ सत्संगति छिन एकमैं, होयसु अनुभव लोय ॥ २१ ॥

टीकाः-ऋग् यजुर् साम अथर्वणरूप जो वेद हैं तिनसैं आदि लेकर आयुर् आदिक चार उपवेद षट् व्याकरणादि वेदके अंग, ब्रह्मादि अष्टादश पुराण, न्याय मीमांसा औ धर्मशास्त्र इन संपूर्णोंके अवलोकन कीयेतैं जो ब्रह्म आत्माका अभेद निश्चयरूप फल होवै है; सो सत्संगकर एक छिनमैं पुरुष अनुभव करै है । सोई कहा हैः-श्लोक "श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ॥ ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलम्" पुनः यही अर्थ जनक औ अष्टावक्रके संवादकर स्पष्ट कहा है। या श्लोकका अर्थ यह हैः-"कोटि ग्रंथोंकर जो ब्रह्मात्माका अभेदरूप अर्थ कहा है सो अर्थ श्लो-

ककर कहता हूं, ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है औ जीव ब्रह्मरूप है"

(२३) अब सत्संगको सुमेरु अरु कैलासतैं अधिक वर्णन करै हैं:—

दोहा--किं सुमेरु कैलास किं, सब तरु तरै रहंत ॥ सत्संगति गिरिमलयसम, सब तरु मलय करंत ॥ २२ ॥

टीका:--जैसैं गिरिमलय कहिये सुगंधिवाला पर्वत, अपणेमैं स्थित वृक्षोंकूं मलय कहिये सुगंधिवाले करै है, तैसैं संतबी स्वसमीपवर्ती पुरुषोंमैं स्ववर्ती श्रेष्ठ गुण प्राप्त करे है, यातैं मलयागिरिके समान हैं। ननु सर्व देवोंका निवासस्थान औ स्वर्णमय मेरु तैसैंही रजतरूप जो कैलास तिनके समान संत, किउ ना हुए? तहां सुनोः— यद्यापि मेरु स्वर्णमय है तथापि क्या है, औ यद्यापि कैलास रजतमय है तथापि क्या है, काहेतैं स्ववर्ती वृक्षोंको स्वर्ण किंवा रजतरूप नहीं कर सके हैं, यातैं संतोंकी तुल्यताके योग्य नहीं ॥ २२ ॥

(२४) अब उक्त अर्थमैं प्रमाणरूप जो वसिष्ठवचन, तिसको अर्थतैं पढ़े हैंः—

दोहा--मुक्ति द्वारपालक चतुर, शम संतोष विचार॥ चौथो सत्संगत धरम, महापूज्य निर्धार ॥ २३ ॥

टीकाः--जैसैं राजमंदिरमैं द्वारपाल अन्य पुरुषका प्रवेश करावै हैं, तैसैं मुक्तिरूप मंदिरमैं प्रवेश करावणेवाले यद्यपि शम, संतोष, विचार, सत्संग, यह चार हैं; तथापि चतुर्थ जो सत्संगरूप धर्म सो विद्वानोंने महापूज्य निर्णय कीया है ॥ २३ ॥

सोई उत्तर दोहेकर दिखावै हैंः—

दोहा--मुक्ति करन बंधन हरन, बहुत यतन जग भव्य ॥ पै यह कोटि उपाय करि, सत्संगत कर्तव्य ॥ २४ ॥

टीकाः--यद्यपि मुक्तिके करनेवाले औ बंधनोंके हरनेवाले बहुत यत्न शास्त्रोंमैं कहे हैं, तथापि भव्य जो

विद्वान् तिनोंने यह निर्णय कीया है, अनेक उपायकर मुमुक्षुने सत्संगही करणीय है ॥ २४ ॥

तामैं हेतु कहै हैं:—

दोहा-और धर्म जेतिक जगत, आहिं सकाम स्वरूप ॥ ज्ञान साधन उद्योत-को, है सत्संग अनूप ॥ २५ ॥

टीका:—और यावत् धर्म जगत्में हैं सो इस लोक औ परलोकका जो विषयजन्य सुख तिसके देनेवाले हैं, यातैं सकामरूप हैं, औ उपमासैं रहित जो सत्संग है सो ज्ञानकी प्रकटताका साधन है ॥ २५ ॥

(२५) अब ताकी श्रेष्ठतामैं प्रमाण कहै हैं:—

दोहा-श्रुति स्मृति श्रीमुख कह्यौ, सत्सं-गत जग सार ॥ अनाथ मिटावै विष-मता, दरसावै सुविचार ॥ २६ ॥

टीका:—ग्रंथकार उक्तिः—श्रुतिस्मृतिमैं औ भागवतमैं श्रीकृष्ण देवनेभी यही कहा है:—" इस जगत्मैं सत्सं-

गही सार है, काहेतैं सुष्ठु जो ब्रह्मविचार ताकूं दिखायके भेद बुद्धि दूर करे है "॥ २६ ॥

दोहा--दुतियो माल विचारको, तिलक-
सहित विश्राम ॥ इती भयो कह संत-
गुण, हैं जौ आत्माराम ॥ २७ ॥

इति श्रीविचारमालायां संतमहिमावर्णनं नाम
द्वितीयविश्रामः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ ज्ञानभूमिकावर्णनं नाम

तृतीयविश्रामप्रारंभः ॥ ३ ॥

(२८) अब ज्ञान कीयां सप्त भूमिका दिखावणेकी इच्छा कर तृतीय प्रकरणका आरंभ करते हुए ग्रंथकार, आदिमैं शिष्यकी उक्ति कहे हैं:--शिष्य उवाच.

दोहा--भो भगवन् गुण साधुके, मैं जाने
निर्धार ॥ निरपेच्छक संकल्प गत, हैं सु-
खसिंधु अपार ॥ १ ॥

टीका:--हे भगवन् ! आपने कहा जो संत अपेक्षासैं रहित हैं औ सुखके समुद्र हैं, सो इत्यादि संतोंके लक्षण मैंने निश्चय कर जाने हैं ॥ १ ॥

अब जिस अभिप्रायकूं चित्तमैं धारकर शिष्यने कहा, सो अभिप्राय प्रगट करे हैं:—

दोहा--हौं कामी वै सुमति चित, मोहि न आवै बूझ ॥ कैसैं हित उपदेशकी, परे गैल निज सूझ ॥ २ ॥

टीका:--हे भगवन्! काम नाम विषयोंका है तिनकी इच्छावाला मैं हूं यातैं कामी हूं, वे महात्मा सुमतिचित्त कहिये चेतनमैं निष्ठावाले हैं; तातैं मेरा औ उनका संबंध कैसे होवे ? औ जो आप ऐसे कहो संत दयालु स्वभाव हैं तातैं तेरी उपेक्षा करैं नहीं, तथापि मोहि न आवै बूझ कहिये मैं प्रश्न नहीं कर जाणूं हूं, तातैं किस रीतिसैं निजहित कहिये अपणा मोक्ष ताका मारग जो ज्ञान, सो कैसे जान्या जावे ॥ २ ॥

(२७) अब प्रश्नसैं विना संतोंकी समीपता मात्रसैं पुरुषोंको बोध होवै है यह वार्ता दो दोहोंकर गुरु कहे हैं:—श्रीगुरुरुवाच.

दोहा—कहत संत जे सहजही, बात गीत रुचि बैन ॥ ते तेरे तन दुख हरन, वायक सब सुख दैन ॥ ३ ॥

टीका:—हे शिष्य ! संत जो यथारुचि स्वाभाविक परस्पर बात करे हैं:—"कहोजी भोक्ता कोन है ? चिदाभास है जी ! काहेतैं जी ? कर्ता होणेतैं जी" इत्यादि । औ गीत कहिये:—"सही हूं मैं सच्चित आनंदरूप, अपने कर्म करे सब इंद्रै, हों प्रेरक सबका भूप" इत्यादि पदोंकर कदाचित गायन करे हैं ! औ बैन कहिये शास्त्रोंके वचन कथाके समय उच्चारण करे हैं, औ वायक कहिये तत्त्वमस्यादि महावाक्य शिष्योंप्रति कहे हैं, ते संपूर्ण तेरे हृदयमैं होणेवाले जो दुःख तिनके हरणेवाले हैं; औ सब सुख कहिये ब्रह्मसुख तत्त्वज्ञानद्वारा ताके देणेवाले हैं ॥ ३ ॥

दोहा-बोलत सहज स्वभाव जे, वचन मनोहर संत ॥ सप्तभूमिका ज्ञानकी, तिनहींमैं दरसंत ॥ ४ ॥

टीका:-हे शिष्य ! संत जो मनके हरनेवाले स्वाभाविक बैन बोले हैं, तिन वचनोंमैंहीं ज्ञानकियां सप्त भूमिका दिखावे हैं। इति अन्वयः ॥ ४ ॥

(२८) शिष्य उवाच.

दोहा-भो भगवन् मैं दुखित अति, और न कछु सुहाय ॥ सप्त भूमिका ज्ञानकी, कहौ मोहिं समुझाय ॥ ५ ॥

(२९) श्रीगुरुरुवाच ॥ शुभ इच्छा सुविचारना, तनु मानसा सुहोय ॥ सत्त्वापत्ति-असंसक्ति, पदार्थाभाविनि सोय ॥ ६ ॥ तुरिया सप्तम भूमिका, हे शिष यह निधार ॥ जो कछु अब संशय करे, बरनों सोइ प्रकार ॥ ७ ॥

(३०) शिष्य उवाच ॥ भो भगवन् लघु मति सुगम, रहस्य लख्यो नहि जात ॥ भिन्न भिन्न ताते कहो, ज्ञान भूमिका सात ॥ ८ ॥

टीका:-रहस्य नाम स्वरूपका है। अन्य स्पष्ट॥८॥

(३१) श्रीगुरुरुवाच. ॥ ज्ञानभूमिका वर्णन-

दोहा-विषयविषे भइ द्वेषता, गुरु तीरथ अनुराग ॥ ताते शुभ इच्छा कही, कथा श्रवण मन लाग ॥ ९ ॥

टीका:-विषयोंमें अनित्यता, सातिशयता । दुःख-साध्यता औ जिनका स्पर्शमात्र आयुपरिणाममें अति दुःखप्रद है इत्यादि दूषणोंतें द्वेषता कहिये त्यागकी इच्छापूर्वक गुरुतीर्थमें प्रीति औ पुराणादिकोंके श्रवणमें चित्तकी प्रवृत्ति ॥ ९ ॥

दोहा-भगवति रति गति आन मति, प्रेमयुक्त नित चित्त ॥ गुण गावत पुलकित हृदय ॥ दिन दिन सरस सुहित्त ॥ १० ॥

टीका:–तिन पुराणोंके श्रवणतैं भगवत् विषै प्रीति भगवत् ज्ञानतैं भिन्न और किसीतैं मोक्षका निश्चय ताकी निवृत्ति, भगवत्मैं प्रेमसहित चित्तकी स्थिति, औ परमेश्वर भक्तवत्सल हैं, दयालु हैं, प्रणतपाल हैं, पतितपावन हैं इत्यादि भगवत गुण गायन करते हुए शरीरमैं पुलकावली औ प्रतिदिन हृदयमैं भगवतसंबंधी अधिक प्रीति, इत्यादि शुभ गुणोंकी जिज्ञासाके संभवतैं प्रथम शुभइच्छा नाम भूमिका कही ॥ १० ॥

(३२) अब अपर सुविचारना नाम भूमिकाका स्वरूप कहै हैं:–

दोहा–दूजी कही विचारना, उपज्यो तत्त्वविचार ॥ एकांत ह्वै शोधन लग्यो, कोऽहं को संसार ॥ ११ ॥

टीका:–जब तत्त्वविचार उपज्यो, तत्त्व क्या है, मिथ्या क्या है यह मैं जानूं, तब एकांतमैं स्थित होइकर विचार करने लागा:–मैं कौन हूं, यह स्थूल देहही मैं हूं, जो स्थूल देहहीं मैं होवों तो याकूं त्याग

कै परलोकमैं कैसे गमन करूं, तातैं स्थूलदेह मैं नहीं, औ परलोकमैं गमन औ या लोकमैं आगमन लिंग-देहका होवै है, जे लिंगदेहही मैं होवों तो लिंगदेहका सुषुप्ति अवस्थामैं कारणमैं लय होवै है औ मैं सुषु-प्तिमैंभी रहूंहूं, तातैं मैं लिंगदेहभी नहीं औ सुषुप्तिमैं कारणदेह रहे है. सो मैं होवौं तो मैं अज्ञ हूं या अनुभवतैं कारणदेहरूप अज्ञान मेरी दृश्य प्रतीत होवै है, तातैं सोबी मैं नहीं. इस रीतिसैं त्रिते शरीरोंतैं भिन्नभी मैं कर्ता भोक्ता हूं वा अकर्ता हूं ? कर्ता सावयव होवै है मेरे अवयव प्रतीत होवैं नहीं, यातैं मैं कर्ता नहीं, याहीतैं भोक्ता नहीं; सो अकर्ताबी मैं सर्व शरीरोंमैं एक हूं वा नाना हूं? वेद जीवब्रह्मका अभेद प्रतिपादन करेहै, जो आत्मा नाना होवै तो अभेद बने नहीं, यातैं सर्व शरीरोंमैं एक हूं । सो एकबी मैं ब्रह्मसैं अभिन्न कैसे हूं ? इस वार्ताके जानणेवास्ते गुरुकी शरणको प्राप्त हो-वौं । औ को संसार कहिये कौनसा संसार मेरे तांई दुःखदाई है ? ईश्वर रचित, वा जीवरचित; ईश्वररचित

संसार यह है:—"तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय" सो परमेश्वर इच्छा करता भया "मैं एकसैं बहुत प्रजारूप होवौं" या परमेश्वरइच्छातैं जगत्की उपादानरूप प्रकृति तमोप्रधान होवे है, तिसतैं शब्दसहित आकाशकी उत्पत्ति होवे है; आकाशतैं वायुकी, वायुमें स्वगुण स्पर्श औ शब्द गुण कारणका होवै है। वायुतैं अग्नि, अग्निमें अपना रूप गुण औ शब्द स्पर्श कारणोंके होवे है। अग्नितैं जल होवे है औ जलमें आपका रस गुण औ शब्द स्पर्श औ रूप ये तीन कारणोंके गुण होवे हैं। जलतैं पृथ्वी औ पृथ्वीमें आपका गंधगुण औ शब्द स्पर्श रूप औ रस, ये चार कारणोंके गुण उपजते हैं। इस रीतिसैं भूतोंकी उत्पत्तितैं पश्चात् पंचभूतोंके मिले सत्त्व अंशतैं अंतःकरणकी उत्पत्ति होवै है। सो अंतःकरण, वृत्तिभेदसैं चार प्रकारका है:—मन, बुद्धि 'चित्त, अहंकाररूप, तैसैं भूतोंके मिले रजो अंशतैं प्राण, अपान, समान, उदान, व्यानरूप, पंचविध प्राण होवै है। हृदय [१] गुदा [२] नाभि

[३] कंठ [४] औ सर्व शरीर [५] ये इनके क्रमसैं स्थान होवै हैं। औ क्षुधापिपासा [१] मलमूत्र अधोनयन [२] भुक्त पीत अन्नजलको पाचन [३] योग समकरणा [४] श्वास औ रसमेलन [५] ए पंच इनकी क्रमसैं क्रिया होवै हैं। तैसें एक एक भूतके सत्त्व अंशतैं पंच ज्ञान इंद्रियोंकी उत्पत्ति इस रीतिसैं होवै हैः—आकाशके सत्वरज अंशतैं श्रोत्र औ वाक्की उत्पत्ति। वायुके सत्त्व रजो अंशतैं त्वक् औ पाणिकी उत्पत्ति। अग्निके सत्त्व रजोअंशतैं घ्राण औ गुदाकी उत्पत्ति होवै है। इस रीतिसैं सूक्ष्म सृष्टिकी उत्पत्तिसैं अनंतर ईश्वर इच्छासैं भूतोंका पंचीकरण इस रीतिसैं होवै हैः— एक एक भूतके तमोअंशके दो दो भाग भये तिनमें एक एक भाग पृथक् ज्योंका त्यों रहा, अपर अर्ध भागोंके चार चार भाग किये, सो अपने अपने भागकूं छोड़के पृथक् रहे, अर्धभागोंमें मिलेतैं पंचीकरण होवै है। एक एकमैं पंच पंच मिलणेका नाम पंचीकरण है। तिनतैं स्थूल ब्रह्मांडकी उत्पत्ति होवै है। ब्रह्मांडके

अंतर चतुर्दश भुवन, तिनमें रहणेंवाले देवदैत्य मनुष्यादि शरीर, तथा तिनके यथायोग्य भोग्य होवै हैं। इत्यादि जो ईश्वरसृष्टि सो सुख दुःखकी हेतु नहीं, अपर जो जीवसृष्टि सो सुख दुःखकी हेतु है। यामैं दृष्टांत. ग्रंथांतरमैं इस रीतिसै लिख्या हैः—जैसें दो पुरुषनके दो पुत्र विदेशमें गए होवैं, तिनमैं एकका पुत्र मरजावै, एकका जीवता होवै, सो जीता पुत्र बड़ी विभूतीकूं प्राप्त होयके किसी पुरुषद्वारा अपने पिताकूं अपनी विभूति प्राप्ति की औ द्वितीयके मरणका समाचार भैजे तहां समाचार सुनावणेवाला दुष्ट होवै, यातैं जीवतें पुत्रके पिताकूं कह है तेरा पुत्र मरगया औ मरे पुत्रके पिताकूं कहै तेरा पुत्र शरीरतैं निरोग है, बड़ी विभूतिकूं प्राप्त हुआ है, थोड़े कालमैं हस्ती आरूढ बड़े समाजतैं आवैगा। ता वंचक वचनकूं सुनके जीवते पुत्रका पिता रोवै है बड़े दुःखकूं अनुभव करै है औ मरे पुत्रका पिता बड़े हर्षकूं प्राप्त होवै है। इस रीतिसैं देशांतरविषे ईश्वररचित जीवतेका सुख होवै नहीं, तैसैं दूसरेका ईश्वर-

रचित पुत्र मरगया है ताका दुःख होवै नहीं, मनोमय जीवै है ताका सुख होवै है। यातैं जीवसृष्टि ही सुखदुःखकी हेतु है। ननु ईश्वर सृष्टिते जीवसृष्टि भिन्न होवै तो प्रतीत हुई चाहिये औ प्रतीत होवै नहीं, यातैं भिन्न नहीं ? सो शंका बनै नहीं:–काहेतैं? जैसैं एकहीं ईश्वररचित स्त्रीशरीरमें पतिकूं भार्या औ भ्राताको भगिनी तथा पुत्रको माता प्रतीत होवै है, इत्यादि दश पुरुषोंकूं भार्या भगिनी आदि शरीर प्रतीत होवै हैं। तथा दशोंकोही पृथक् पृथक् सुख दुःखका साक्षात्काररूप भोग होवै है। यातैं माता भगिन्यादि रूप जीवसृष्टि अवश्य मानी चाहिये, सोई सुखदुः–खका हेतु है इस रीतिसैं विचारना। यह दूसरी सुविचारणा नाम भूमिका है ॥ ११ ॥

(३२) अब तृतीय तनुमानसा भूमिकाका स्वरूप कहै हैं:–

दोहा–तनुमानसा सु तीसरी, मनको प्र-

त्याहार ॥ थिर ह्वै शुद्ध स्वरूपकी, राखै नित संभार ॥ १२ ॥

टीका:—बाह्य अंतर विषयोंतैं चित्तका रोध करकै नैरंतर्य्य ब्रह्मरूप ध्येयकी स्मृति सो तीसरी तनुमानसा नाम भूमिका है। मनकी सूक्ष्मता, तनुमानसा शब्दका अर्थ है ॥ १२ ॥

(३४) अब चतुर्थी सत्त्वापत्ति भूमिकाका स्वरूप दिखावै हैं:—

दोहा—चतुर्थी सत्त्वापत्ति यह, अनुभव उदय अभंग ॥ आत्मा जग दरस्यो भलै, ज्यों मध सिंधु तरंग ॥ १३ ॥

टीका:—पूर्वोक्त रीतिसैं ब्रह्मचिंतन करणेतैं उदय भया जो संशय विपर्यय रहित तत्त्वसाक्षात्कार, तिसकर आत्मामैं नामरूप आतमक प्रपंचकी मिथ्यारूपकर प्रतीति होवै है। जैसैं समुद्रमैं मिथ्यारूप करके लहरियोंकी प्रतीति होवै है। यह चतुर्थी सत्वापत्तिरूप भूमिका है१३

(३५) अब पंचमी असंसक्ति नाम भूमिकाका स्वरूप कहै हैं:—

दोहा—छूटयो तन अभिमान जब, निश्च-य कियो स्वरूप ॥ असंसक्ति यह भूमि-का, पंचम महा अनूप ॥ १४ ॥

टीका:—चतुर्थ भूमिकामैं निश्चय किया जो पृथक् अभिन्नरूप ब्रह्म, तिसमैं अभ्यासकी अधिक-तासैं मदीयत्व रूपकर जो शरीरका अभिमान ताकी निवृत्ति, अर्थात् पर शरीरवत् शरीरकी प्रतीति; यह उपमासैं रहित पंचमी असंसक्ति नाम भूमिका है॥१४॥

(३६) अब षष्ठी पदार्थाभाविनी भूमिका दिखावै हैं:—

दोहा—कहे पदारथ बुद्धि लौं, सबको हो-इ अभाव ॥ यह पदारथाभाविनी, षष्ठी भूमि लषाव ॥ १५ ॥

टीका:—दृष्टांतः—जैसैं स्वर्णवेत्ता पुरुषकूं कटका-दि भूषणोंके विद्यमान होयाबी सर्व स्वर्णरूप ही प्रती-

त होवे है। तैसैं देहसैं लेकर बुद्धिपर्यंत जो पदार्थ कहे हैं तिन सर्वोंका अभाव कहिये अधिष्ठान ब्रह्मरूपसैं प्रतीति; यह पदार्थोंकी अनुपलब्धिरूप षष्ठी भूमिका कही है॥१५॥

(३७) अब तुरीया नामक सप्तमी भूमिका दिखावै हैं:—

दोहा—भावाभाव न तहां कछु, सप्तम तुरियामांहि॥ मैं तू तहां न संभवै, कहा अहै कह नाहिं॥ १६॥

टीका:—सप्तम तुरीया नाम भूमिकामैं मैं शब्दका अर्थ प्रमाता, तू शब्दका अर्थ प्रमेय, इन दोनोंके बनणेतैं अर्थसैं सिद्ध हुआ जो प्रमाण या त्रिपुटीरूप द्वैतकी जैसे चतुर्थी पंचमी भूमिकामैं भावरूपकर प्रतीति होवै; तैसैं नहीं होवे हैं। अभाव रूपकर जैसे षष्ठी भूमिकामैं प्रतीति होवै, तैसैंबी होवै नहीं। जो कहो भावाभाव पदार्थतैं भिन्न शेष रही वस्तु क्या है? तहां सुनो:—वाणीका अविषय होनेतैं अवाच्य है। यामैं श्रुति प्रमाण है:—"यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह" मन-

सहित वाणियां न प्राप्त होइकै जातैं निवृत्त होवै हैं" "यन्मनसा न मनुते" "जिसको मनकरके लोक नहीं जाणते" ॥ १६ ॥

(३८) अब ग्रंथ अभ्यासका फल कहे हैंः—

सोरठा—प्रगट करी गुरुदेव, सप्तभूमि-
का ज्ञानकी ॥ अनाथ लहै निज भेव, चि-
त दै करत विचार जो ॥ १७ ॥

टीकाः—अनाथदासजी कहे हैंः—गुरुने प्रगट करी जो ज्ञानकी सप्तभूमिका, चित्तको एकाग्रकर जो तिनकों विचारे, सो अपने वास्तव स्वरूपको जाण लेवै ॥ १७ ॥

दोहा—तृतीयो माल विचारको, हरन स-
कल संताप ॥ ज्ञानभूमिका प्रगट कर,
भयो शांत अब आप ॥ १८ ॥

इति श्रीविचारमालायां सप्तज्ञानभूमिकावर्णनं
नाम तृतीयविश्रामः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ ज्ञानसाधनवर्णनं नाम
चतुर्थविश्रामप्रारंभः ॥ ४ ॥

(३९) पूर्व विश्राममैं ज्ञानकी सप्त भूमिका कही अब ज्ञानके साधन जाननेकी इच्छावाला हुआ शिष्य कहे हैः—शिष्य उवाच ॥

दोहा—भगवन् मै जान्यो भले, सप्तभूमिका ज्ञान॥ निर्मल ज्ञान उद्योतकूं, साधन कौन प्रमान ॥ १ ॥

टीकाः—हे भगवन्! ज्ञानकी सप्त भूमिका मैं भली प्रकार जानी है, अब समष्टि व्यष्टि उपाधिरूप मलसैं रहित शुद्धब्रह्मका जो ज्ञान, ताकी उत्पत्तिके साधन कौन हैं ? यह कहो। याका भाव यह हैः—जिन साधनोंतैं ज्ञानमैं अधिकार होवै सो प्रमातामैं होणेवाले साधन कहो ? औ प्रमाण कहिये प्रत्यक्षादि षट् प्रमाणमैं किस प्रमाणजनित तत्त्वज्ञान कहा है ? यह कहो ॥१॥

अब शिष्य, अपनी उक्तिमैं हेतुकथनार्थ प्रथम दृष्टांत कहे हैः—

दोहा—भगवन् तिमिर नसै नहीं, कहि दीपककी बात॥ पूरन ज्ञान उदय विना, हृदय भरम नहिं जात॥ २॥

टीका:—हे भगवन्! जैसैं अंधकारमें स्थित पुरुषका दीप तेल बत्ती जोतिकीया बातों कीयेसैं अंधकार दूर नहीं होवै है, तद्वत् ब्रह्मज्ञानके उदय विना हृदयमैं स्थित जो अनात्मामैं आत्मप्रतीतिरूप भ्रम सो दूर नहीं होवै हैं; यातैं आप ज्ञानके साधन कहो॥ २॥

(४०) इस रीतिसैं शिष्यकर पूछे हुए श्रीगुरु ज्ञानके साधन कहे हैं:—श्रीगुरुरुवाच॥ ज्ञान साधन कहत हैं:—

दोहा-प्रथमैं जगदासक्ति तजि, दारा सुत गृह वित्त॥ विषवत विषय विसारि जग, राग द्वेष अतित्त॥ ३॥

टीका:—हे शिष्य! प्रथमं विषय संपादनका साधन रूप जो जगत् तामैं आसक्तिका त्यागकर, काहेतैं संसारासक्ति ज्ञानकी विरोधी है। यह पंचदशीमैं कहा

है:– ॥ श्लोक ॥ " संसारासक्तचित्तः संश्चिदाभासः कदाचन ॥ स्वयंप्रकाशः कूटस्थं स्वतत्त्वं नैव वेत्त्ययम् (१) " "यह चिदाभासरूप जीव विषयसंपादनादि ध्यानरूप जगत्‌मैं आसक्तचित्त हुआ, कदापि स्वतः प्रकाश कूटस्थ स्वस्वरूपकूं नहीं जानै है" । औ धन, दारा, सुत, गृह इनमैंबी आसक्तिका परित्याग कर । जातैं ज्ञानके अधिकारीमें आसक्तिका अभाव गीतामैं कहा है:– " असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु " । " पुत्र दारा गृहआदिकोंमें प्रीतिका अभाव" औ शब्दादि विषयोंकूं विषकी न्यांई भीलाए, काहेतैं विषयासक्तिबी ज्ञानमैं प्रतिबंध है । सो अष्टावक्रमें कहा है:–" मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्त्यज " औ रागद्वेषका सर्वथा परित्याग कर, काहेतैं ? भगवानने कहा है:–" इंद्रियोंके शब्दादि विषयोंमैं राग द्वेष स्थित हैं, मुमुक्षु तिनके वश न होवै, काहेतैं सो इसके परिपंथी हैं " ॥ २ ॥

(४१) पूर्व कहा, जो जगत् आदि पदार्थोंमें आसक्तिका त्याग, ताकी सिद्धि अर्थ प्रत्येक पदार्थमैं दूषण दिखावणेकी इच्छावाले हुए, प्रथम स्त्रीमैं दूषण दिखावै हैं:–

दोहा—तिय अतिप्रिय जे जानि नर, करत प्रीति अधिकाय॥ ते शठ अति मति मंद जग, वृथा धरी नरकाय॥४॥

टीका:—जे नर स्त्रीकूं अति प्यारी जानकर तामें अति प्रीत करै हैं, ते पुरुष शठ हैं औ अति मंदबुद्धि हैं; काहेते मोक्षका साधन मनुष्यशरीर तिन्होंने व्यर्थ खोया है॥ ४ ॥

दोहा—अस्थि मांस अरु रुधिर त्वक्, कश्मलनखासिष पूर॥निरधन अशुचि मलीन तन, त्याग आग ज्यूं दूर ॥ ५ ॥

टीका:—हे शिष्य ! स्त्रीशरीर हाड मास अरु रक्त चमडी इन अशुद्ध पदार्थोंकर नखसे लेकर शिखापर्यंत पूरन है औ जातिकर भी नीच भगवानने कही है औ ऊपरसे शरीरकर अपवित्र औ मलीन है औ यह स्त्री शरीरकरही दुष्ट नहीं किंतु स्वभावसेभी दुष्ट है। सोभी कहा है:—॥ चौपाई ॥ "नारिस्वभाव स-

त्य कवि कहहीं, अवगुण आठ सदा उर रहहीं ॥ साहस अनृत चपलता माया, भय अविवेक अशौच अदाया ॥" " कोटि वज्र संघात जु करिये, सबको सार खींच इक धरिये तिनके हिय सम सो न कठोरा, ऋषि मुनिगण यह देत ढंढोरा ॥" याते अग्निकी न्याईं दाहका हेतु जानकर ताका त्याग कर ॥ ५ ॥

ननु जैसे सर्प विछु आदिक स्पर्शसे अनर्थकर होवै हैं, तैसे स्त्रीभी स्पर्शद्वारा अनर्थका हेतु है; चिंतनध्यानादिकों कर नहीं ? यह आशंका कर कहे हैं:—

दोहा—अहिविष तन काटे चढ़ै, यह चिंतवत चढ़ि जाय ॥ ज्ञान ध्यान पुनि प्राण हूं, लेत मूलयुत खाय ॥ ६ ॥

टीका:—यद्यपि सर्पका विष, स्पर्श कियेसे चढ़ै है तथापि यह कामरूप विष, स्त्रीके चिंतनमात्रसे शरीरमें प्रवेश करे है; याते चिंतनकूं भी मैथुन कहा है औ स्पर्श कियेसे तो शास्त्रज्ञानकूं दूर करे है। सोई कहा

है—"जब पंडित पढ़ि तियपै ढिसरे, उक्ति युक्ति सबही तब विसरे" ॥ किंवा चित्तकी एकाग्रता अर्थ जो ध्येयाकार वृत्तिरूप ध्यान आश्वास इनकूं विचारसहित दूर करे है । मैथुन कियेसे श्वास अधिक टूटे है इहीं प्राणका खाणा है ॥ ६ ॥

(४२) या स्त्रीचिंतनकूं मैथुनरूप कहीं कहा हैं? या आकांक्षके होयां कहै हैं:—

दोहा—मैथुन अष्ट प्रकार जो, अनाथ कह्यो श्रुति चाहि ॥ इनते निजविपरीत जो, ब्रह्मचर्य कहि ताहि ॥ ७ ॥

टीका:—वक्ष्यमाण दोहेमें कहणा जो है अष्टमैथुन सो श्रुतिमें देखकर कहा है । इस अष्ट प्रकारके प्रकारका मैथुनसे जो विपर्यय है स्त्रीके श्रवण स्मरणादिका त्यागरूप, सो ब्रह्मचर्य कहिये है ॥ ७ ॥

सो अष्ट प्रकारका मैथुन कौनसा है ? तहां सुनो:—

दोहा—सरवन सिमरन कीरतन, चिंतवन

बात इकंत॥ दृढ संकल्प प्रयत्न तन, प्राप-
ति अष्ट कहंत ॥ ८॥

टीका:—स्त्रीके सौंदर्यादि गुणोंका श्रवण औ कदाचित् अनुभव कियेका स्मरण औ हर्षपूर्वक तिनका कथन औ तिनका चिंतन औ एकांत स्थलमें स्त्रीसे संभाषण औ ताकी प्राप्तिका दृढ संकल्प, पुनः ताकी प्राप्ति अर्थ प्रयत्न औ तासे संभोग; यह अष्ट प्रकारका मैथुन कहा है ॥ ८ ॥

(४२) इस रीतिसे स्त्रीमें दूषण कहकर, अब पुत्रमें दूषण दिखावै हैं:—

दोहा—सुत मीठी बातां कहै, मनहु मा-
हिनीमंत ॥ सुनि सुनि आनंद पावहि,
वश होत मूढ जग जंत ॥ ९ ॥

टीका:—पुत्र जो मधुर तोतले वचन कहे है, सो मानो चित्तके मोहित करणेवाले मोहिनी मंत्र हैं । तिनोंकूं पुनः पुनः श्रवण करके जे आनंदमग्न होके ताके वश होवे हैं ते पुरुष मूढ हैं । सोई कहा है:—

॥ दोहा ॥ "कर विचार यों देखिये, पुत्र सदा दुख रूप ॥ सुख चाहत जे पूतते, ते मूढनके भूप" ॥ ९ ॥

पुत्रमें आसक्त पुरुषको मूढ कहा तामें हेतु कह्या चाहिये ? ऐसे कहो, तहां सुनोः—

दोहा—काज अकाज लह्यो नही, गह्यो मोह दृढ बंध ॥ सुगुरु खोज मग ना चह्यो, वह्यो सिंधु मति अंध ॥ १० ॥

टीका:—जाते पुत्रमें आसक्तिरूप दृढ बंधन कर बंधायमान होके जा पुरुषने सुष्ठु गुरुका अन्वेषण (खोज) करके, मेरे तांई मनुष्य शरीर पाइकै क्या कर्तव्य है ऐसे नहीं जान्या औ मोक्षके मार्ग तत्त्वज्ञानकूं संपादन नहीं किया औ विवेकसे रहित होकर जन्ममरणरूप संसारसमुद्रमें निमग्न हुआ है; ताते सो पुरुष मूढ है। सोई कहा है:—" निद्रा भोजन भोग भय, ए पशु पुरुष समान ॥ नरन ज्ञान निज अधिकता, ज्ञान विना पशुजान " ॥ १० ॥

(४४) इस रीतिसे पुत्रमें दूषण दिखाइके गृहमें दूषण दिखावे हैं:—

सोरठा—अंधकूपसम गेह, पर्‍यो न जान्यो मरम शठ॥ बँध्यो पशूवत नेह, सुत त्रिय क्रीडामृग भयो॥ ११॥

टीका:—जलसे रहित वनके कूपकी न्याई दुःखदाई जो गृह, ताके भरणमें प्रयत्नवान् हुआ औ गृहमें ... जो सुतदारादि तिनमें स्नेहरूप रज्जुकर बंधायमान हुआ, तिनकी क्रीडाका मानो मृग भया है! औ जैसे कोई पुरुष अपने आल्हादके अर्थ गृहमें प्रीति करे हैं तैसे ये सुत दारा आदि अपने सुख अर्थ मेरेमें प्रीति करे हैं या मर्मकूं नहीं जाने है; याते शठ है ॥ ११॥

(४५) अब द्रव्यमें दूषण दिखावे हैं:—

दोहा—द्रव्य दुखद तिहुं भांति यह, संपति मानत क्रूर॥ बिसर्‍यौ आत्मज्ञान धन, सब सुख संपति मूर॥ १२॥

टीकाः—सुत, दारा, गृह इन तीनोंकी न्याईं दुःखदाई जो धन ताकूं जो संपत्ति माने है, सो पुरुष क्रूर कहिये झूठा है; काहेते जा धनके संपादन कर आपने आत्माका ब्रह्मरूपतासे जो ज्ञानरूप धन सो विस्मरण भया है। सो ज्ञान कैसा है? सब सुख कहिये ब्रह्मसुख ताकी संपत्ति कहिये प्राप्तिका हेतु है ॥ १२ ॥

धन दुःखका हेतु किस प्रकारसे है? ऐसे कहो तहां सुनोः—

दोहा—बहु उद्यम प्राणी करै, अति क्लेशता हेतु ॥ जुरे तु रच्छा निपट दुख, जाइ तु प्राणसमेत ॥ १३ ॥

टीकाः—धनकी प्राप्ति अर्थ जो पुरुष कृषिवाणिज्यादि बहुत उपाय करे हैं, तिनकर तिनकूं अति क्लेश होवै है याते संग्रहकालमें दुःखदाई है। औ किसी पुण्यवशते इकत्र हो जावै तो नृप चौर अग्न्यादिकोंते रक्षा करनेमें अति क्लेश होवै है औ नृप चोर अग्न्यादि निमित्तते

दूर होजावै तो प्राणवियोगके समान दुःख होवै है; जाते धन, पुरुषका बाह्य प्राण है। सोई पंचदशीमें कहा है:- "अर्थोंके एकत्र करनेमें क्लेश है, तैसे रक्षा करनेमें औ नाशमें औ खरचनेमें क्लेश है; ऐसे क्लेश करनेवाले धनोंकूं धिक्कार है" ॥ १३ ॥

(४६) पूर्व एकादश दोहोंकर कहे अर्थकूं दृष्टांत हित एक दोहेकर कहे हैं:-

दोहा-ताते इनको संग तूं, छाड कुशल जिय मान ॥ मानो विषते सर्पते, ठगते छुट्यो निदान ॥ १४ ॥

टीका:-जाते सुत, दारा, गृह, धन, उक्त रीतिसे दुःखदाई हैं; तातैं तूं इनके संबंधकूं त्याग करि आपना कल्याण निश्चय कर। यद्यपि कल्याण नाम सुखका है सो इष्टकी प्राप्तिसे होवै है; तथापि अनिष्टकी निवृत्तितेभी होवै है। यामें दृष्टांत कहै हैं:-जैसे कोई बालक विष सर्प ठगके वश हुआ किसी पुण्यवशतैं छूटके आपको सुखी माने तद्वत ॥ १४ ॥

(४७) पूर्व तृतीये दोहेके प्रथम पादमें "जगतमें आसक्तिका त्याग कर" यह कहा तामें हेतु कहे हैं:—

दोहा—जगत् खेदमें परे जिन, केवल दुखतामाहि ॥ सत्य सत्य पुन सत कहूं, सुख स्वप्नेहु नाहिं ॥ १५ ॥

टीका:—हे शिष्य ! पूर्व उक्त जगत्का परित्याग कर, तामें आसक्ति मत कर; काहेते तामें केवल क्लेशही है। इस अर्थकूं प्रतिज्ञाकर कहे हैं, सत्य इत्यादि पदोंकर १५

(४८) अब श्रोताकी बुद्धिमें अर्थके आरूढ होने अर्थ, जगत्को समुद्रके रूपालंकारसे कहे हैं:—

दोहा—जग समुद्र आसक्ति जल, कामादिक जलजंत ॥ भँवर भरम तामें फिरैं, दुख सुख लहर अनंत ॥ १६ ॥

चिंता वडवा आग्नि जहँ, तृष्णा प्रबल समीर ॥ जिहिं जहाज यामें पऱ्यो, तिहिं किम धीर समीर ॥ १७ ॥

टीका:—जिस पुरुषका चित्तरूपी जहाज या जगत्रूप समुद्रमें पड़ा है ताके अंतःकरणमें धैर्यादि दैवीसंपदके गुण कैसे उदय होवै । अन्य स्पष्ट ॥ १७ ॥

(४९) पूर्वोक्त जगतमें आसक्ति किस हेतुते होवै है ? या आकांक्षाके होयां, शरीरमें आत्म अभिमानते होवै है, यह वार्ता सदृष्टांत दो दोहों कर कहे हैं:—

दोहा—अपनो चित दुसरा भयो, पर अवगुण दर संत ॥ दृष्टिदोषते प्रकट ज्यों, बिव शशि गगन लहंत ॥ १८ ॥

टीका:—जैसे अपने चित्तमें दुराशतारूप दोषकर अन्य पुरुषनिष्ठ दूषण प्रतीत होवै हैं औ नेत्रोंमें तिमिरादि दोषकर आकाशमें दो चंद्र प्रसिद्ध प्रतीत होवै हैं ॥ १८ ॥

इस रीतिसे दृष्टांतकर कहे अर्थकूं दार्ष्टांतमें जोड़े हैं:—

दोहा—तातें तन अभिमान तजि, अजर

पासि बड़ आहि ॥ ज्ञान लोप संसारकर, भूल न गहिये ताहि ॥ १९ ॥

टीकाः—उक्त दृष्टांतोंकी न्याई शरीरमें आत्म अभिमानकर जगत्‌में आसक्ति होवै, ताते ता अभिमानका परित्याग कर । यद्यपि चिरकालकी होनेते अभिमानरूप पासी अजर है तथापि ज्ञानकर ताका बाध निश्चयरूप लोप होवै है,ताते सो तू कर । इस रीतिसे लोप किये पुनः संसारमें भूलकरभी आसक्ति होवै नहीं॥१९॥

(५०) विषवत् विषय बिसार यह पूर्व कह्या, तामें हेतु कहे हैं:—

दोहा—सुख ब्रह्मा इंद्रादिके, श्वानविष्ठवत त्याग ॥ नाममात्र सुख अवनिके, भूल न इन अनुराग ॥ २० ॥

टीकाः—ब्रह्मा औ इंद्रादि देवनके जो शब्दादि विषय हैं, सो कूकरके विष्ठावत् नीरस हैं; तिनमें सुख नहीं; ताते तिनका परित्याग कर । औ पृथ्वीके शब्दादि

विषयोंमें सुख संज्ञामात्र है। जैसे किसी जन्मांध पुरुषका कमलनयन नाम कल्पे, सो निरर्थक कथन मात्र है। ताते हे शिष्य! इन-पृथ्वीके शब्दादि विषयोंमें भूलकरभी प्रीति मत कर। ननु विषयोंमें सुख नहीं, यह तुमारी कपोलकल्पना है, सो शंका बने नहीं:-काहेते युक्ति प्रमाणकर या अर्थकी सिद्धि होवै है। जो कहो युक्ति प्रमाण कौन है? तहां सुनोः-जो विषयमें आनंद होवै तो, एक विषयसे तृप्त जो पुरुष ताकूं जब दूसरे विषयकी इच्छा होवै तबभी प्रथम विषयसे आनंद हुआ चाहिये; औ होवै नहीं है; याते विषयमें आनंद नहीं। किंवाः-जो विषयमें हीं आनंद होवै तो, जा पुरुषका प्रियपुत्र अथवा और कोई अत्यंत प्यारा जो अकस्मात् बहुतकाल पीछे मिल जावै तब वाकूं देखतेही प्रथम जो आनंद होवै सो आनंद फेर नहीं होता, सो सदाही हुआ चाहिये; काहेते आनंदका हेतु जो पुरुष है सो वाके समीप है, याते पदार्थमें आनंद नहीं। किंवाः-जो विषयमें आनंद होवै तो, समाधिकालविषे जो योगानंदका भान होवै सो

न हुआ चाहिये; काहेते समाधिमें किसी विषयका संबंध नहीं है; याते विषयमें आनंद नहीं। इत्यादि युक्ति है। औ वेदमें यह लिखा है:–"आत्मस्वरूप आनंदकूं लेके सारे आनंदवाले होवै हैं." ननु विषयोंमें आनंद नहीं है तो भान क्यूं होवै है? तहां सुनोः– विषय उपहित चेतन स्वरूप आनंदकी पुरुषकूं विषयमें प्रतीति होवै है। ननु विना होइ वस्तुकी प्रतीति होवै नहीं औ चेतनस्वरूप नित्य आनंदकी विषयमें अनिर्वचनीय उत्पत्ति होवै, यह कहना बने नहीं औ अन्यदेशमें स्थित विषयकी अन्यदेशमें प्रतीति वा अन्यवस्तुकी अन्यरूपते प्रतीतिरूप अन्यथा ख्यातिका अंगीकार नहीं; याते विषय उपहित चेतनस्वरूप सुखकी विषयमें प्रतीति होवै है, यह कहना बनै नहीं? सो शंकाभी बने नहीं:–काहेते यद्यपि अन्यथाख्यातिका सिद्धांतमें अंगीकार नहीं, तथापि अधिष्ठान औ आरोप्य जहां एकवृत्तिके विषय होवैं, तहां अन्यथाख्याति ही मानी है। तथाहि:–जैसे रक्तपुष्पसंबंधी स्फटिकरूप अधिष्ठान औ ला-

लीरूप अध्यस्त दोनों एक वृत्तिके विषय हैं, तहां स्फटिकमें रक्तताकी प्रतीति अन्यथाख्यातिसे होवै है ! तैसे इहां सिद्धांतमें अन्यथाख्यातिही अंगीकार करी है । औ अन्यथाख्यातिमें सर्वथा विद्वेष होवै तो, विषय उपहित आनंदका विषयमें अनिर्वचनीय संबंध उपजे है । विषय उपहित आनंदका स्वरूपसंबंध चेतनमें है, ताकी विषयमें अनिर्वचनीय उत्पत्ति होवै है; याते इहां अनिर्वचनीय ख्यातिही है । अरु जो कहे, विषयाकार वृतिसे विषयउपहित चेतन स्वरूपानंदका लाभ होवै तो, मार्गमें वृक्षाकार वृत्तिसे तथा सर्वज्ञेयाकार वृत्तिसे ज्ञेय उपहित चेतनस्वरूपानंदका लाभ हुवा चाहिये ? सो बने नहींः—काहेते अभिलषित विषयाकार वृत्तिसे विषयउपहित चेतन स्वरूपानंदका भान होवै है, अन्यका नहीं ॥ २० ॥

(५१) ननु विषयोंमें सुख नहीं तो, पुरुषोंकी प्रवृत्ति क्यों होवै है ? या शंकाके होयां, विचार विना होवै है औ प्रवृत्तिसे प्रत्युत क्लेशहीं होवै है, यह अर्थ सदृष्टांत तीन दोहोंकर दिखावै हैंः—

दोहा—धायो चात्रिक धूम लहि, स्वाति बूं-
दको मानि ॥ मूरख पर्‍यो विचार बिन,
भई दृगनकी हानि ॥ २१ ॥

टीका:—जैसे कोऊ चातक पक्षी, दूरसे धूमकूं दे-
खकर तामें मेघबुद्धिसे स्वाति बूंदका निश्चय करके, सो
मूर्ख पक्षी विचारसे विना ता धूममें प्रवेश करे तो बूं-
दका अलाभ औ नेत्रोंकी हानि होवै है ॥ २१ ॥

अन्य दृष्टांत:—

दोहा—नारि पराई स्वप्नमें, भुगती अति
सुख पाय ॥ धर्म गयो कंद्रप गयो, अशु-
चि भयो रु खसाय ॥ २२ ॥

टीका:—जैसे किसी विचारशून्य पुरुषने परस्त्री
वा स्वप्नस्त्री अतिसुख मानके भोगी, ताते संतानका
अलाभ औ धर्मकी हानी होवै हैं । कंद्रप गयो कहिये
वीर्यकी हानी अरु खसाय कहिये वीर्यपातते, अ-
शुचि होवै है ॥ २२ ॥

अन्य दृष्टांत कहे हैं:—

दोहा—चोग देषि ज्यूं परत खग, आप बंधावत जार॥ ऐसे सुखसो जानि जग, वश भये हीन विचार॥ २३॥

टीका:—जैसे विचारशून्य पक्षी, जलवाले स्थानमें चोगकूं देखके तृप्तिके अर्थ प्रवृत्त होवै, तहां तृप्तिका अलाभ होवै है औ प्रत्युत अपने आपके जालमें बंधायमान करै है, इस रीतिसे दृष्टांत कहकर, अब दार्ष्टांत कहे हैं:— सो पूर्वोक्त विषय, सुखरहित है; विचारशून्य पुरुष तिनके वश होयके केवल दुःखहीको अनुभव करे हैं ॥२३॥

(५२) अब तिन विचारशून्य विषयी पुरुषोंकी निर्लज्जताको, श्वान दृष्टांतसे प्रगट करे हैं:—

दोहा—श्वान स्वातियको संगकरि, रहत घरी उरझाय॥ जग प्रानी ताको हसैं अपनो जन्म विहाय॥ २४॥

टीका:—कूकर जो अपने पशु स्वभावसे स्वकूक-

रीसे ग्राम्यधर्म करिके एक घटिकाभर फस रहे हैं, ताकूं जो विचारशून्य जगतके जीव हसे हैं, सो तिनकी निर्लज्जता है; काहेते ऐसे विचार नहीं करे हैं, जो यह श्वान षट्मास पश्चात एकवार संभोग करनेते क्लेशको अनुभव करे हैं, हमारा तो इस कर्ममें जन्म व्यतीत होवै है, हमको परिणाममें कितना क्लेश होवेगा ॥ २४ ॥

(५२) औ जो कहो; पूर्वोक्त विषयोंके त्यागमें कौन प्रमाण हैं तहां सुनोः—यद्यपि श्रुति स्मृतिरूप प्रमाण बहुत हैं तथापि ज्ञानी अज्ञानीके वैराग्यके भेद दिखावणे अर्थ महात्माका आचाररूप प्रमाण कहे हैंः—

दोहा--अनाथ बिसारे विषयरस, संतन जान मलीन॥ ता उचिष्टसों रति करै, कामी काक अधीन॥ २५॥

टीकाः—स्वामी अनाथजी कहे हैंः—संतोंने विषयोंको अविद्याके कार्य औ अनित्यता आदि दूषणोंसहित जानकर त्यागे हैं औ जो पुरुष प्रथमसुक्त औ त्यक्त पदार्थोंसे प्रीति करै हैं औ कामी हुए तिनके आधीन

होवै है, सो पुरुष काक कहिये कौंवा जैसे पक्षियोंमें नीच है तैसे अधम है. भाव यह है:—अज्ञानीको जो वैराग्य होवै है सो विषयोंमें दोषदृष्टिसे होवै है, सो कालांतरमें पुनः विषयोंमें सम्यक् बुद्धिसे दूर होवै है। जैसे मैथुनके अंतमें सर्वपुरुषोंको स्त्रीमें ग्लानि होवै है औ कालांतरमें शोभन बुद्धि होवै है, याते अज्ञानीका वैराग्य मंद है औ ज्ञानवान्‌को जो वैराग्य होवै है सो विषयोंमें दोषदृष्टि औ मिथ्यात्व निश्चयपूर्वक होवै है, याते त्यक्त विषयोंको पुनः ग्रहण करे नहीं। जैसे अपने वमनको फिर पुरुष ग्रहण नहीं करता तैसे। याते ज्ञानीका वैराग्य दृढ़ है॥ २५॥

(५४) इस रीतिसे दोषदृष्टिरूप वैराग्यका हेतु औ त्यागरूप वैराग्यका स्वरूप कहा, अब वैराग्यका फल कहे हैं:—

दोहा–जगडंबरसों जग जहां, उपजै निज निरवेद॥ पाक कांचरी सर्प ज्यों, छुटे सहज जग खेद॥ २७॥

टीका:--जहां पर्यंत जगतरूप आडंबर है, अर्थ यह जो प्रत्यक्ष प्रमाणके विषय या जगतमें औ शब्दादि प्रमाणजन्य ज्ञानके विषय स्वर्गादि जगत्में, जब पुरुषको वैराग्य उत्पन्न होवै, तब अनायासतेंही ज्ञानद्वारा जन्म-मरणरूप खेदकी निवृत्ति होवै है। जैसे पकी त्वचाको अनायासतैं सर्प त्यागै है तैसे ॥ २६ ॥

(५५) ज्ञानके अधिकारीमें एक वैराग्यही नहीं होवै है, किंतु अपर साधन भी होवै हैं, यह कहे हैं:--

दोहा--पाप छीन तप दान बल, हृदय शांत गतराग ॥ विषय वासना त्याग करि, भयो मुमुक्षु बड़भाग ॥ २७ ॥

टीका:--जो पुरुषने दान बल कहिये ईश्वरार्थ शुभ कर्मोंकर पाप निवृत्त कीये हैं, अर्थात् जो शुद्ध हृदय है औ उपासनारूप तपके बलसे शांत हृदय कहिये एकाग्रचित्त है औ गतराग कहिये वैराग्यसंयुक्त है औ विषयोंकी वासना त्यागकर अर्थात् षट् संपत्तिसंयुक्त होकर जो बड़े भाग्यवाला अविद्या तत्कार्यरूप बंधकी

निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षकी इच्छावाला है। इहां विवेकका अध्याहार करणा। इस रीतिसे शुद्धहृदय औ एकाग्रचित्त औ साधनचतुष्टय संपन्न जो पुरुष सो तत्त्वज्ञानका अधिकारी है॥ २७॥

(५६) अब ज्ञानके अधिकारीको कर्तव्य कहे हैंः—

दोहा—सो अधिकारी ज्ञानको, श्रवण ज्ञानमय ग्रंथ॥ सो तबलगि जबलगि भलै, समझै पंथ अपंथ॥ २८॥

टीकाः—सो अधिकारी पुरुष षट्लिंगोंसे वेदांतवाक्योंका तात्पर्य निश्चयरूप श्रवण करे। सो षट्लिंग यह हैंः—उपक्रम उपसंहारकी एकरूपता (१) अभ्यास [२] अपूर्वता (३) फल [४] अर्थवाद (५) उपपत्ति [६] अब इनके अर्थ सुनोः—जो अर्थ आरंभमें होवै सोई समाप्तिमें होवै, तहां उपक्रम उपसंहारकी एकरूपता कहिये है। जैसे छांदोग्यके षष्ठाध्यायके उपक्रम कहिये आरंभमें अद्वि-

तीय ब्रह्म है औ उपसंहार कहिये समाप्तिमें अद्वितीय ब्रह्म है (१) पुनः पुनः कथनका नाम अभ्यास है। छांदोग्यके षष्ठ अध्यायमें नववार तत्त्वमसि वाक्य है, याते अद्वितीय ब्रह्ममें अभ्यास है (२) प्रमाणांतरसे अज्ञातताको अपूर्वता कहे हैं। उपनिषद्रूप शब्द प्रमाणसे औ प्रमाणका अद्वितीय ब्रह्म विषय नहीं, याते अद्वितीय ब्रह्ममें अज्ञातताकूप अपूर्वता है (३) अद्वितीय ब्रह्मके ज्ञानतैं मूलसहित शोक मोहकी निवृत्तिरूप फल कह्या है [४] स्तुति अथवा निंदाका बोधक वचन अर्थवाद वाक्य कहिये है। अद्वितीय ब्रह्मबोधकी स्तुति, उपनिषद्में स्पष्ट है [५] कथन करे अर्थके अनुकूल युक्तिको उपपत्ति कहे हैं। छांदोग्यमें सकल पदार्थोंका ब्रह्मसे अभेद कथनके अर्थ कार्यका कारणसे अभेद प्रतिपादन, अनेक दृष्टांतोंसे कह्या है (६) ! इस रीतिसे षट्लिंगोंसे सकल वेदांतनका तात्पर्य जानिये है। सो श्रवण, ज्ञानमय ग्रंथ जो उपनिषद् ग्रंथ हैं तिनसे सिद्ध होवै है। तिनको श्रवण

करै। सो तिनको तबलग श्रवण करै, जबलग श्रवणका फल प्रमाणगत संशयकी निवृत्ति होवै। सो फल यह है:- पंथ कहिये वेदांतवाक्य अद्वितीयब्रह्मके प्रतिपादक हैं अपंथ कहिये अन्य स्वर्गादि अर्थके प्रतिपादक नहीं. इस रीतिसे समझै कहिये निश्चय करै ॥ २८ ॥

यदि कहो, अद्वितीय ब्रह्ममें वेदांतवाक्योंके तात्पर्यका निश्चय षट्लिंगोंते होवै है, परंतु ब्रह्मात्माका अभेद निश्चय काहेते होवै हैं? तहां सुनोः-

दोहा--तत्त्वमसि अहंब्रह्मास्मि, इत्यादिक महावाक्य ॥ गुरुमुख श्रवण करे भले, सारासार हताक ॥ २९ ॥

टीका:-गुरुमुखसे तत्त्वमसि महावाक्यके अर्थ श्रवण करणेते "अहं ब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूं यह ज्ञान होवै है। सो या रीतिसे होवै है:-तत्त्वमसि या वाक्यमें तत, त्वम्, 'असि, ये तीन पद हैं, तिनमें प्रथम पदका वाच्य कहे हैं:-माया उपाहित जगत्का कारण, सर्वज्ञतादि

धर्मवान्, परोक्षताविशिष्ट, सत्य ज्ञान अनंतस्वरूप जो ईश्वर, चेतन, सो तत्पदका वाच्य है । अब त्वंपदका वाच्य कहे हैं:—जो अंतःकरणविशिष्ट, अहंशब्द औ अहंवृत्तिकी विषयतासे प्रतीत होवै है, सो जीव चेतन त्वंपदका वाच्य है औ असिपद दोनोंकी एकताका बोधक है । अब वाक्यार्थ कहे हैं:—जो सर्वज्ञतादि गुणवान् परोक्ष ईश्वर चेतन सो अंतःकरणविशिष्ट अल्पज्ञताआदि धर्मवान् नित्य अपरोक्ष तू है यह कहना विरुद्ध है बने नहीं. काहेते विरुद्ध अर्थमें वक्ताका तात्पर्य होवै नहीं, याते सार असार हताक कहिये ईश्वर जो जीव ईश्वरका स्वरूप तामें सार जो चेतनभाग ताकूं एक जान । महावाक्योंमें लक्षणा अंगीकार करी है, याते लक्षणाका हेतु स्वरूप कहे हैं:—वक्ताके तात्पर्यकी अनुपपत्ति लक्षणाका बीज है । नैयायिक अन्वयकी अनुपपत्ति लक्षणाका बीज कहे हैं,सो बने नहीं:—काहेते यह तिनका अभिप्राय है. जहां वाक्यमें स्थित पदोंके अर्थोंका परस्पर संबंध न बने तहां लक्षणा होवै है 'जैसे गंगायां ग्रामः' या

वाक्यमें स्थित जो गंगा औ ग्रामपद तिनके अर्थ जो नगर औ नदीका प्रवाह, तिनका परस्पर संबंध बनें नहीं याते लक्षणा मानी है। या नैयायिक उक्तिका 'यष्टीः प्रवेशय' या वाक्यमें व्यभिचार है; काहेते भोजनके समय उत्तम पुरुषने अन्य पुरुषको कहा 'यष्टिका प्रवेश करावो' इहां यष्टिपदका अर्थ जो दंड ताका प्रवेश पदार्थसे संबंध संभवैभी है, तथापि वक्ताके तात्पर्यके अभावते लक्षणा होवै है। याते तात्पर्य अनुपपत्तिही लक्षणामें बीज है औ लक्षणाके ज्ञानमें शक्यका ज्ञान उपयोगी है, काहेते शक्यसंबंध लक्षणाका स्वरूप है, शक्य जाने बिना शक्यसंबंधरूप लक्षणका ज्ञान होवै नहीं, याते शक्यका लक्षण कहे हैं:—जा पदमें जा अर्थकी शक्ति होवै ता पदका सो अर्थ शक्य जान। अब लक्षणाका स्वरूप कहे हैं:—शक्यका जो लक्ष्यार्थसे संबंध, सो लक्षणाका सामान्य लक्षण है। अब लक्षणाके जहती आदि भेद औ तिनके लक्षण कहे हैं:—वाच्यार्थका परित्याग करिके

वाच्यार्थका संबंधी जो अन्य अर्थ तामें जो पदका संबंध, सो जहती लक्षणा कहिये है। जैसे "गंगामें ग्राम है" या वाक्यमें गंगापदका वाच्य जो प्रवाह ताकूं त्यागिके ताका संबंधी जो तीर तामें गंगापदकी लक्षणा है। अथ अजहती लक्षणाः—वाच्यार्थको न त्यागिके वाच्यार्थका संबंधी जो अन्य अर्थ तामें जो पदका संबंध, सो अजहती लक्षणा कहिये है। 'यथा काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' किसीने कहा 'काकोंते दधिकी रक्षा करना, सो मार्जारादिकोंते संरक्षण विना दधिकी रक्षा बने नहीं, याते काकपदका शक्य जो वायस पक्षी, ताके संबंधी जो दधि उपघातक मार्जारादि, तामें काकपदकी लक्षणा है। अथ भागत्यागलक्षणाका स्वरूपः—शक्य अर्थके एक भागका परित्याग करिके शक्य अर्थके एक भागमें जो पदका संबंध सो भागत्याग लक्षणा कहिये है। जैसे प्रथम दृष्ट देवदत्तकूं अन्य देशमे देखकर कहे; 'सो यह देवदत्त है'. तहां भागत्याग लक्षणा है; काहेतें परोक्षदेश अतीत काल सहित देवदत्तशरीर सो

पदका अर्थ है, समीप देश औ वर्तमानकालसहित दे-
वदत्तशरीर यह पदका अर्थ है; अतीतकालसहित अ-
न्यदेशसहित जो वस्तु सोई वर्तमानकाल औ समीप-
देशसहित है, यह समुदायका वाच्य अर्थ है, सो संभवै
नहीं:-काहेते अतीतकाल औ वर्तमानकालका विरोध
है, तथा अन्यदेशका औ समीपदेशका विरोध है, याते
परोक्षदेश अतीतकालरूप एक भागका त्याग करके
एक भाग देवदत्त शरीरमात्रमें सो पदकी लक्षणा औ
समीपदेश औ वर्तमानकालरूप एक भाग त्याग करके,
एक भाग देवदत्त शरीरमात्रमें यह पदकी लक्षणा है।
या रीतिसे लक्षणाके तीन भेद हैं। तिनमेंसे महावाक्यमें
जहती अजहती संभवै नहीं औ भागत्याग या रीतिसे
है:-पूर्वोक्त वाक्यार्थके विरोधते तत्पदके वाच्यमें जो
माया औ मायाकृत सर्वशक्ति सर्वज्ञता आदि धर्म, इतने
वाच्य भागकूं त्यागके, चेतनभागविषे तत्पदकी भाग-
त्याग लक्षणा है। तैसे त्वंपदके वाच्यमें जो अविद्या अं-
श औ अविद्याकृत अल्पशक्ति अल्पज्ञता आदिधर्म, ताकूं

त्यागके चेतनभागमें त्वंपदकी भागत्याग लक्षणा है। इस रीतिसे भागत्याग लक्षणाते ईश्वर औ जीवके स्वरूपमें लक्ष्य जो चेतनभाग तिनकी एकता तत्त्वमसि महावाक्य बोधन करे हैं। मूलमें आदिपदसे ग्रहण कीये जो 'अहं ब्रह्मास्मि,' 'अयमात्मा ब्रह्म,' 'प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म,' ये तीन महावाक्य, तिनमेंभी यही रीति जान लेनी ॥ २९ ॥

(५७) अब मननका स्वरूप औ फल कहे हैं:—

दोहा--जग प्राणी विच्छेपचित, तजौ दूर तिन संग ॥ बैठि इकंत स्वतंत्र ह्वै, करै मनन सर्वंग ॥ ३० ॥

टीका:--यद्यपि महावाक्योंसे अभेदनिश्चयते पश्चात् कर्तव्य नहीं, तथापि पूर्वोक्त रीतिसे कहे अर्थमें जाकूं संशय होवै, सो जगत्‌में विक्षिप्तचित्त पुरुषोंका संग दूरते त्याग कर, एकांतस्थानमें स्थित होइ करके औ सर्व ओरते स्वतंत्र होइके, जीवब्रह्मके अभेदकी साधक औ भेदकी बाधक युक्तियोंसे अद्वितीय

ब्रह्मका चिंतनरूप मनन करे। सो युक्तियां यह हैः—जैसे सच्चित् आनंद लक्षण श्रुतिमें आत्मा कहा है, तैसेही सच्चित् आनंद लक्षण ब्रह्म कहा है, याते ब्रह्मरूप आत्मा है। किंवाः—ब्रह्म नाम व्यापकका है। देशते जाका अंत नहीं होवै सो व्यापक कहिये, ताते जो आत्मा भिन्न होवै तो देशते अंतवाला होवैगा। जाका देशते अंत होवै ताका कालतेभी अंत होवै है यह नियम है, याते आत्मा अनित्य होवैगा। जाका कालते अंत होवै सो अनित्य कहिये है। याते ब्रह्मसे भिन्न आत्मा नहीं। किंवाः—आत्मासे भिन्न जो ब्रह्म होवै तो, सो अनात्मा होवैगा, जो अनात्मा घटादिक हैं सो जड़ हैं, याते आत्मासे भिन्न ब्रह्मभी जड़ही होवैगा। किंवाः—अनुमानरूप युक्ति कहे हैंः—"जीवो ब्रह्माभिन्नः चेतनत्वात् यत्र यत्र चेतनत्वं तत्र तत्र ब्रह्माभेदः यथा ब्रह्मणि"। जो वादी यामैं यह शंका करे किः—जीवरूप पक्षमें चेतनत्वरूप हेतु तो है, ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं? या शंकाका तर्कसे प्रहार करणा,

अनिष्ट आपादनका नाम तर्क है। सो यह है:—जीव-रूप पक्षमें चेतनत्वरूप हेतु मानके ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं माने तो ब्रह्मके अद्वितीयताकी प्रतिपादक 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' या श्रुतिसे विरोध होवैगा श्रुतिसे विरोध आस्तिक अधिकारीकूं इष्ट नहीं, या अनिष्ट आपादनरूप तर्कके भयते ब्रह्माभेद रूप साध्यका अभाव वादी कहे नहीं। इस रीतीसे शंका निवृत्त होवै है। इत्यादि युक्तियोंसे मनन होवै है। मननसे निवर्तनीय संशय शास्त्रांतरमें इस रीतिसे कहा है:—संशय दो प्रकारका है, एक प्रमाणगत संशय है द्वितीय प्रमेयगत संशय है। प्रमाणगत संशय पूर्व कहा है। प्रमेय संशयभी आत्मसंशय औ अनात्मसंशय भेदसे दो प्रकारका है। अनात्मसंशय अनंतविध है। ताके कहनेसे उपयोग नहीं। आत्मसंशयभी अनेक प्र-कारका है:—आत्मा ब्रह्मसे अभिन्न है अथवा भिन्न है, अभिन्न होवै तोभी सर्वदा अभिन्न है अथवा मोक्षकालमें-हीं अभिन्न होवै है; सर्वदा अभिन्न नहीं, सर्वदा अभि-

न्न होवै तोभी आनंदादि ऐश्वर्यवान् है, अथवा आनंदादिरहित है, आनंदादिक ऐश्वर्यवान् होवै तोभी आनंदादिक गुण है अथवा ब्रह्मात्माका स्वरूप हैं; इसतें आदि लेके ततपदार्थाभिन्न त्वंपदार्थविषे अनेक प्रकारका संशय है। तैसे केवल त्वंपदार्थगोचर संशय भी आत्मगोचर संशय हैः—आत्मा देह आदिकोंतें भिन्न है वा नहीं, भिन्न कहै तोभी अणुरूप है वा मध्यम परिमाण है वा विभु परिमाण है, विभु कहै तोभी कर्ता है अथवा अकर्ता है, अकर्ता है तोभी परस्पर भिन्न अनेक हैं अथवा एक है; इस रीतिके अनेक संशय केवल त्वंपदार्थगोचर हैं। तैसे केवल ततपदार्थ गोचर भी अनेक प्रकारके संशय हैंः—वैकुंठादि लोक विशेषवासी ईश्वर परिच्छिन्न हस्तपादादिक अवयवसहित शरीरी है अथवा शरीररहित विभु है,जो शरीररहित विभु है तोभी परमाणु आदिक सापेक्ष जगतका कर्ता है अथवा निरपेक्ष कर्ता है, परमाणु आदिक निरपेक्ष कर्ता कहे तोभी केवल कर्ता है अथवा अभिन्न निमित्तोपादानरूप कर्ता है जो अ-

भिन्न निमित्तोपादान कहै तोभी प्राणिकर्मनिरपेक्ष क-र्त्ता होनेते विषमकारिता आदिक दोषवाला है अथवा प्राणिकर्म सापेक्ष कर्त्ता होनेते विषमकारिता आदिक दोषरहित है; इसते आदि अनेक प्रकारके तत्पदार्थगो-चर संशय हैं । सो सकल संशय प्रमेयसंशय कहिये हैं। तिनकी निवृत्ति मननसे होवै है ॥ ३० ॥

अब पूर्व कहे फलकूं पुनः स्पष्ट करे हैंः—

दोहा— नितप्रति करत विचारकै, स्थिर-ता पावै चित्त ॥ बोध उदय छिन छिन करे, जान्यो नित्य अनित्य ॥ ३१ ॥

टीकाः—नित्यप्रति युक्तियोंसे ब्रह्मके चिंतनरूप विचारके कियेतें प्रतिक्षण बोधकी निःसंदेहता होवै है, ताते ब्रह्मात्माका अभेदरूप जो प्रमेय तामें चित्तकी स्थि-ति होवै है, काहेते जिसने ऐसे जाना हैः—नित्य कहिये ब्रह्मात्माका नित्यही अभेद है औ अनित्य कहिये ब्र-ह्मात्माका भेद उपाधिकृत होनेते अनित्य है औ नित्य अर्थमेंही मुमुक्षुकी स्थिति होवै है यह नियम है॥ ३१ ॥

(५८) अब जगत सत है, आत्मा कर्ता भोक्ता है, औ ब्रह्मात्माका भेद सत्य है, इस विपरीत ज्ञानरूप विपर्ययके हुए कर्तव्य कहे हैं:—

दोहा—शुद्ध स्वरूप प्रकाशमें, कछु प्रवेशता होइ ॥ साधन पाई प्रौढ़ता, निदिध्यासन कहि सोइ ॥ ३२ ॥

टीका:—यद्यपि श्रवण मननरूप साधनकी दृढ़तासे प्रमेय औ प्रमाणगत संशय तो संभवै नहीं तथापि पूर्व अभ्यस्त वासनाके वशते प्रकाशरूप प्रत्ययकूं आत्मामें जाको कर्तृभोक्तृत्वकी प्रतीतिरूप विपर्यय होवै सो पुरुष अनात्माकारवृत्तिरूप व्यवधानरहित ब्रह्माकारवृत्तिकी स्थितिरूप निदिध्यासन करे ॥ ३२ ॥

[५९] अब निदिध्यासनका अवांतर फल कहे हैं:—

दोहा—कामादिक समता उदै, भये सु याहि प्रकार ॥ निशि आगम प्राणी है सबै, होत अल्प संचार ॥ ३३ ॥

टीकाः—व्यवधानरहित ब्रह्माकार वृत्तिरूप समताके उदय भयां जो फल होवै सो कहे हैंः—जौनसीयां कामक्रोधरूप वृत्तियां पुरुषके हृदयमें पूर्व निरंतर होतीयां थीयां, सो निदिध्यासनके कीये कदाचित् होवै हैं। दृष्टांतः—जैसे रात्रिके आगमनसे पुरुषोंका गमनागमनरूप संचार स्वल्प होवै है तैसे ॥ ३३ ॥

(६०) अब संशय विपर्ययसे रहित तत्त्वज्ञानके उदय भये कर्तव्यका अभाव कहे हैंः—

दोहाः—शनैः शनैः साक्षातता, उदय भई जव जाहि ॥ है नाहीं शुभ अशुभ सुख, दुख नहीं दरसै तांहि ॥ ३४ ॥

टीकाः—श्रवण मनन निदिध्यासनके करते हुए जब जिस महात्माकूं तत्त्वज्ञान उदय भया, तब ताकूं विधि निषेध नहीं है। सोई कहा हैः—"निस्त्रैगुण्यमार्गमें जो विचरता है, ताको को विधि है को निषेध है" औ ताकूं सुख दुःखभी अपने आत्मामें प्रतीत होवै

नहीं । यद्यपि अहं सुखी अहं दुःखी यह अहंकार विद्वान्में भी प्रतीत होवै है? तथापि अहंशब्दके तीन अर्थ हैंः— एक मुख्य अर्थ औ दो अमुख्य हैं। पदकी शक्ति वृत्तिकर जो प्रतीत होवै सो मुख्य अर्थ कहिये है औ लक्षणा कर प्रतीत होवै सो अमुख्य कहिये है। तथाहिः—आभास सहित कूटस्थ अहंशब्दका मुख्य अर्थ है, या अर्थमें अहंशब्दकूं मूढ पुरुष जोड़ते हैं औ अंतःकरणसहित आभास अरु कूटस्थ ये दोनों भिन्न ।भिन्न अहंशब्दके अमुख्यार्थ हैं। इनमें लौकिक शास्त्रीय व्यवहारमें अहंशब्दको विद्वान् क्रमकर जोड़ते हैं। "अहं गच्छामि अहं तिष्ठामि अहं सुखी अहं दुःखी" या लौकिक व्यवहारमें अहंशब्दकूं विद्वान् साभास अंतःकरणमें जोड़ता है। "असंगोऽहं चिदात्माऽहं" या शास्त्रीय व्यवहारमें अहंशब्दकूं विद्वान् कूटस्थात्मामें जोड़ता है। यद्यपि साभास अंतःकरण अध्यस्त है, सो सुख दुःखका आश्रय बने नहीं, काहेते जो अध्यस्त होवै सो अन्यका आश्रय होवै नहीं यह नियम है। जैसे रज्जुमें अध्यस्त

सर्प, अपनी गमनादि क्रियाका आश्रय बनै नहीं तैसें; तथापि अज्ञान तो शुद्धचेतनमें अध्यस्त है औ अज्ञान उपहि में अंतःकरण अध्यस्त है, अंतःकरण उपाहित जीव साक्षीमें सुखदुःखादि अध्यस्त हैं। इस रीतिसे अध्यस्त जो धर्मादिक तिनका अधिष्ठान आत्मा है। अध्यासके अधिष्ठानपनेका अंतःकरण उपाधि है, याते साभास अंतःकरणके धर्म हैं यह कहा, धर्मादिक अंतःकरणके धर्म होवैं अथवा अंतःकरणविशिष्ट प्रमाताके धर्म होवैं अथवा रज्जु सर्प स्वप्नपदार्थोंकी न्याई किसीके धर्म न होवैं, सर्व प्रकारसे आत्माके धर्म नहीं; याते विद्वानकूं सुख दुःख आत्मामें प्रतीत होवै नहीं, यह कहा ॥ ३४ ॥

(६१) ग्रंथ अभ्यासका फल कहे हैं;—

दोहाः—चली पूतरी लवणकी, थाह सिंधुकौ लैन॥ अनाथ आप आपै भई, पलटि कहै को बैन ॥ ३५ ॥

टीकाः—जैसे कोई पुरुष लवणकी पूतरीकूं रसीसे

बांधके समुद्रके जल मापणे अर्थ फेंके, सो जलरूप होई पुनः जलसे बाहिर नहीं आवैहै; तैसे या ग्रंथके अभ्यास कीयेते ज्ञानद्वारा ब्रह्मकूं प्राप्त होईके पुनः जीवभावकूं प्राप्त नहीं होवे है। यह गीतामें कहा है:–'यद्गत्वा न निवर्तते'' जिस ब्रह्ममें प्राप्त होके पुनः नहीं निवृत्त होवे हैं,'। यद्यपि मूलमें दार्ष्टांत नहीं, तथापि दृष्टांतके बलते ताकी कल्पना करी है ॥ ३५ ॥

दोहा–अलं तुरिय विश्राम यह, साधन ज्ञान अलाप ॥ पढ़ै याहि अनयासही, लखे ब्रह्म चिद आप ॥ ३६ ॥

इति श्रीविचारमालायां ज्ञानसाधनवर्णनं नाम चतुर्थविश्रामः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ जगदात्मवर्णन नाम
पंचमविश्रामप्रारंभः ॥

(६२) शिष्य उवाच ।

दोहा—साधन ज्ञान लह्यो भलै, भगवन तुम प्रसाद ॥ किह प्रकार आत्मा जगत, मो मन अधिक विषाद ॥ १ ॥

टीकाः—अर्थ स्पष्टभाव यह हैः—हे भगवन् आत्मामें जगत् सत्य है अथवा असत्य है, सत्य कहो तो ब्रह्मज्ञानसे ताकी निवृत्ति नहीं चाहिये औ असत्य कहो तो प्रतीत हुआ नहीं चाहिये ? इस आकांक्षाके भयां, द्वितीयपक्षकूं अंगीकार कर कहे हैं ॥ १ ॥

(६३) श्रीगुरुरुवाच ।

दोहा—अहो पुत्र कीजै नहीं, रंचक ऐसो भर्म ॥ कहां जगत ईश्वर कहां, यह सब मनके धर्म ॥ २ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! आत्मामें जगत सत्य है ऐसा

भ्रम भूल करभी नहीं करना, काहेते जगत स्वरूपते हैही नहीं तो तामें सत्ताका ज्ञान कैसा होवै। जाते कार्यरूप जगतका अभाव है, तामें ताका कर्ता ईश्वर कहां है। ईश्वर जीव दोनों कल्पित हैं, यह पंचदशीमें कहा है:– 'माया आभास करके जीव ईश्वर दोनोंको करे है, या श्रुतिके श्रवणते, तिन दोनोंने सर्व प्रपंच कल्प्या है, कल्पित वस्तु अधिष्ठानमें अत्यंत असत होवे है, याते जगत औ ईश्वरका अभाव कहा है; इनमें प्रतीति मन, कृत है ॥ २ ॥

दोहा–राग द्वेष मनके धरम, तूं तो मन नहि होइ ॥ निर्विकल्प व्यापक अमल, सुखस्वरूप तू सोइ ॥ ३ ॥

टीका:–जैसे जगतमें सत्ता प्रतीति मनका धर्म है, तैसे तामें राग द्वेषभी मनके धर्म हैं,सो मन तू नहीं। जो कहै मनसे भिन्न मेरा क्या स्वरूप है ? तहां सुन! निर्विकल्प कहिये तर्कसे रहित व्यापक, मलरहित, सुखस्वरूप जो चेतनब्रह्म, सो तू है ॥ ३ ॥ पूर्व शिष्यने

कहा जगत् असत् होवै तो प्रतीत न हुआ चाहिये याका उत्तर कहे हैं:-

दोहा—जग तोमैं तू जगतमें, यों लहि तज हंकार॥ मैं मेरो संकल्प तजि, सुखमय अवनि विहार॥ ४॥

टीका:-यह जगत् संपूर्ण तेरे स्वरूपमें कल्पित है। जाते कल्पितकी प्रतीति अधिष्ठान विना होवै नहीं, ताते जगत्में अधिष्ठानरूपतें तूही स्थित है ऐसे जानकर, मैं कर्ता भोक्ता हूं अरु यह वस्तु मेरी है औ मैं संकल्पका कर्ता हूं या परिच्छिन्न अहंकारकूं त्यागकर शांतचित्त हुआ प्रारब्धके अनुसार पृथ्वीपर चेष्टा कर॥४॥

औ जो कहो मिथ्या जगत्की प्रतीति कर तत्त्वज्ञानकी हानि होवैगी ? तहां सुनो:-

दोहा—अज्ञान नींद स्वप्नो जगत, भयो सुखद कहं त्रिस्य॥ ज्ञान भयो जाग्यो जबै, द्रष्टा दृष्टि न दृश्य॥ ५॥

टीका:–जैसे निद्रा समय स्वप्न जगत कहूं सुखदायी प्रतीत होवै है,कहूं दुःखप्रद प्रतीत होवै है,परंतु जब पुरुष जाग्या तब स्वप्न जगत्की स्मृति कर जाग्रत बोधकी हानि होवै नहीं; तैसे अज्ञानरचित दृष्टादृष्टि दृश्यरूप जगत तत्त्वज्ञानके हुए प्रतीतभी होवै है. तोभी ताकर ज्ञानका बाध होवै नहीं। यह पंचदशीमें लिख्या है:–"बोधकर मारे हुए अज्ञान तत्कार्यरूप शव, स्थितभी हैं तथापि बोधरूप चक्रवर्ती राजाकूं तिनोंते भय नहीं; प्रत्युत तिस कर्ताकी कीर्ति होवै है" ॥ ५ ॥

(६४) अरु जो कहो, पूर्व रीतिसे बोधकी हानि काहेते नहीं होवै है ? तहां सुनो:–

दोहा–क्षुधा पिपासा शोक पुन, हरष जन्म अरु अंत॥ ये षट उर्मी धर्म तन, आतमा रहित अनंत ॥ ६ ॥

टीका:–ये षट् उर्मी स्थूल सूक्ष्म शरीरका धर्म हैं:–क्षुधा पिपासा प्राणके धर्म हैं, शोक हर्ष मनके धर्म हैं, जन्म मृत्यु स्थूलशरीरके धर्म हैं, औ अनंतात्मा

इन षट् उर्मीते रहित विद्वानकूं प्रतीत होवै है, याते आत्माका असंग ब्रह्मरूपसे जो ज्ञान सो निवृत्त होवै नहीं। देशकालवस्तुकृत परिच्छेदते रहितको अनंत कहे हैं। ब्रह्मरूप आत्मा श्रुतिमें व्यापक कहा है, याते देशकृत परिच्छेदते रहित है औ अनित्य वस्तुका कालते अंत होवै है आत्मा नित्य है. याते कालकृत परिच्छेदते रहित है औ आत्मा सर्वरूप है, याते वस्तुकृत परिच्छेदते रहित है। परिच्छेद नाम अंतका है ॥ ६ ॥

अब प्रसंग प्राप्त केवल स्थूलशरीरके धर्म दिखावै हैं:—

दोहा--जन्म अस्ति अरु वृद्ध पुनि, विप्रनम छय तननाश॥ षट् विकार ये देहके, आत्मा स्वयंप्रकाश ॥ ७॥

टीका:--अर्थ स्पष्ट ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! मैं जन्मता मरता हूं इस रीतिसे जन्मादि षट्विकार मुझमें प्रतीत होवै हैं, आप कैसे इनका निषेध करो हो ? तहां गुरु कहे हैं:—

दोहा:--चिदाकाश अद्वय अमल, शांत

एक तव रूप ॥ जन्म मरण कित संभवै, कित हंकार अनूप ॥ ८ ॥

टीका:—हे शिष्य ! जो चेतन आकाश द्वैतते रहित औ मलते रहित औ सृष्टि आदिकोंके क्षोभते रहित औ सजातीय विजातीय स्वगत भेदरहित एक चिद् वस्तु है, सो तेरा आत्मा है, तामें जन्ममरणका संभव कैसे होवै औ उपमासे रहित तेरे आत्मामें मैं जन्मता मरता हूं यह अहंकार कैसे संभवै ? इहां जन्ममरणके निषेधते समग्र विकारोंका निषेध कीया ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! ए षट्विकार स्थूल देहके धर्म हैं, मेरे नहीं, परंतु मैं सुखी मैं दुःखी या रीतिसैं सुख दुःखकी प्रतीति मेरे आत्मामें होवै है, याते मैं भोक्ता हूं ? तहां गुरु कहे हैं:—

दोहा—विषय भोग सुस्थान तन, साधक इंद्रिय जोय ॥ याही भोक्ता बुद्धि मन, तू न चतुष्टय होय ॥ ९ ॥

टीका:—शब्दादि पंचविषयरूप भोग्य है औ तिनके भोगनेका स्थान स्थूल शरीर है औ भोक्ताके प्रति तिन भोगोंके निवेदन करनेवाले चक्षुरादि इंद्रिय हैं औ मन बुद्धि उपलक्षित लिंगशरीररूप भोक्ता है, तू इन सर्वोंका प्रकाशक चिदात्मा इनते भिन्न है, याते भोक्ता नहीं ॥ ९ ॥

औ जो कहो बाधित अनुवृत्तिकर प्रतीयमान जो आत्मसंबंधी स्थूल सूक्ष्म शरीर, तिनमें पुनः आत्मप्रतीति होवैगी ? यह आशंका कर, आत्मा अनात्माके सादृश्यके अभावते होवै नहीं, यह कहे हैं:—

दोहा:—कारण लिंग स्थूल तन, मन बुधि इंद्रिय प्राण ॥ ए जड़ तोहिं लहैं नही, तू चैतन्य प्रमाण ॥ १० ॥

टीका:—अनिर्वचनीय अनादि अविद्यारूप कारण शरीर औ दश इंद्रिय औ पंच प्राण औ मन अरु बुद्धि ए सप्तदश अवयवरूप लिंगशरीर औ अन्नमयकोशरूप स्थूलशरीर ये तीनो शरीर तेरा सादृश्यकूं पावे नहीं ।

जाते यह जड है औ तू चैतन्य है; याते सोऽहस्यक अभावते पुनः इनमें आत्मप्रतीति होवै नहीं। जो कहो, आत्मा चैतन्य है यामें क्या प्रमाण है? तहां सुनोः— "य एष हृद्यंतर्ज्योतिः पुरुषः" यह श्रुति प्रमाण है 'यह सर्वके अपरोक्ष हृदयके अंतर पुरुष प्रकाशरूप है' १०

(६५) ननु अनात्मामें आत्मप्रतीति ज्ञानवानकूं मत होवै, परंतु आत्मामें त्रिते शरीररूप अनात्मा कौन संबंधकर प्रतीत होवै है यह कहो? तहां सुनोः—

दोहा—एक तंतुमें त्रिगुणता, उरझि ग्रंथि बहुभाय॥ ऐसे शुद्ध स्वरूपमें, अनाथ जगत दरसाय॥ ११॥

टीका:—जैसे एक तंतूमें प्रथम तीन तागे बनायके पुनः तिनकूं उरझायके ग्रंथि कहिये मणके बनावै हैं, सो मणके जैसे नाना रूपसे तंतुमें कल्पित संबंधसे प्रतीत होवै हैं, तैसे शुद्धरूप चिदात्मामें त्रिते शरीररूप जगत कल्पित तादात्म्य संबंधसे प्रतीत होवै है॥ ११॥

(६६) ननु लिंगशरीरादिरूप उपाधि तो मि-

थ्या संबंधसे प्रतीत होवै, परंतु तामें आभास तो सत्य है? तहां सुनोः–

दोहा–वसनपुतरी बसनमय, नाना अंगअनूप॥ एक तंतु विन नहिं वियो, त्यों सब शुद्ध स्वरूप ॥ १२ ॥

टीकाः–नाना करचरणादि अंगोंसहित वस्त्ररूप मूर्ति औ ताके शरीरपर श्वेत पीतरूप वस्त्र हैं, सो दोनों तंतुमें कल्पित हैं, काहेते विचार किये तंतुसे भिन्न प्रतीत होवैं नहीं, तैसे सब कहिये त्रिते शरीर औ आभास, कल्पित होनेते शुद्ध स्वरूप आत्मासे अतिरिक्त नहीं ॥ १२ ॥

ननु–ऐसे है तो पदर्थोंसे हर्ष शोक क्यूं होवै है ? ए शंकाकर विचार विना होवै है, यह कहे हैंः–

दोहा–देखि खिलौने खांड़के, आनंद भयो मनमांहि ॥ चाह करी जब वस्तुकी, तब सब लय हुइ जांहि ॥ १३ ॥

टीका:--गजरथादिरूप खिलौन्योंकूं देखकर विना विचारसे पुरुषके चित्तमें आनंद होवै है, पुनः ए खांड-ही है ऐसा विचार कियेसे खांडमें लय हुए खिलौने आनंदके जनक होवैं नहीं; तैसे विचार विना देहादि पदार्थ आनंदकर होवै हैं विचारकर आत्मवस्तुरूप अधि-ष्ठानकूं जब जान्या तब अध्यस्त पदार्थ सर्व अधिष्ठानमें लय हुए आनंदके जनक होवैं नहीं ॥ १३ ॥

(६७) अब अधिष्ठानज्ञानशून्य पुरुषोंकी निंदा करे हैं:--

दोहा--लह्यो न शुद्ध स्वरूप जिन,कहा लह्यो तिन कूर॥शाखा दल सींचत रह्यौ, जो नहिं सींच्यो मूर॥ १४ ॥

टीका:--जिन पुरुषोंने निरावरण ब्रह्मरूप अधिष्ठा-नकूं न जानके यज्ञादि कर्मोंमें वा ब्रह्मभिन्न देवनकी उपासनामें निश्चय किया, तो तिन पुरुषोंने क्या निश्चय किया ! जाते कर्मउपासनाका फल कृषि आदिकोंकी

न्याईं विनाशी कहा है। जो कहो ब्रह्मकूं सर्वरूप होने-
ते ब्रह्मादि देवभी ब्रह्मरूपही हैं, याते देवनकी उपास-
नाका निषेध बने नहीं; तथापि अविद्या तत्कार्यकी
निवृत्ति औ आनंदावाप्तिरूप मोक्ष. शुद्धब्रह्मके ज्ञानते-
ही होवै हैं, यह पंचदशीमें लिख्या है। तामें दृष्टांत
कह्या हैः—जैसे पुरुषको वृक्षके मूलमें जलका न सिंच-
न करके, शाखा औ पत्तोंमें जल सिंचनते फलकी
प्राप्ति होवै नहीं ॥ १४ ॥

(६८) ननु देवादिरूप जगत् ब्रह्ममें स्वाभा-
विक प्रतीत होवै है, वा नैमित्तिक है, स्वाभाविक कहो
तो, निवृत्त न हुआ चाहिये औ निवृत्त होवै है, याते
नैमित्तिक है, यह कहो सो निमित्त कौन है, यह कह्या
चाहिये ? तहां सुनोः—

**दोहा—जैसे सांचेमें पऱ्यो, होत क-
नक बहुअंग ॥ नानावत यों ब्रह्ममें, लै
उपाधिको संग ॥ १५ ॥**

टीकाः—जैसे मूषेके संबंधसे कटकादिरूप नानात्व

कंचनमें प्रतीत होवै है, तैसे ब्रह्ममें नानात्वकी प्रतीति मायारूप उपाधिके संबंधसे होवै है ॥ १५ ॥

(६९) ननु यह कहनेमें परिणामवाद प्रतीत होवै है, काहेते पूर्वरूपकूं त्यागके रूपांतरकी प्राप्तिकूं परिणाम कहे हैं । जैसे शीतरूप उपाधिके संबंधसे दुग्धरूपताकूं त्यागिके दुग्ध दधिरूप होवै है; तैसे ब्रह्मभी मायारूप उपाधिके संबंधतें ब्रह्मभावकूं त्यागिके जगत्रूप परिणामको प्राप्त होवै,तो दुग्धादिकोंकी न्यांई विकारी हुआ चाहिये? यह शंका सिद्धांतके अज्ञानते होवै है, काहेते सिद्धातमें विवर्तवाद अंगीकार किया है । पूर्वरूपकूं न त्यागके रूपांतरकी प्राप्तिकूं विवर्त कहे हैं। ब्रह्म, अपने सत्यादि लक्षणरूप स्वरूपकूं न त्यागके आकाशादि जगत्स्वरूपसे प्रतीत होवै है, या अर्थके साधक दृष्टांतोंकूं पंच दोहोंकर कहे हैं:—

दोहा—मृद विकार मृदमय सकल, हिम विकार हिम जान ॥ तंतु विकार सु तंतु ही, यों आतम जग जान ॥ १६ ॥ देखि

रज्जुमें सर्पता, ठूठ चोरके भाय ॥ रजत विचार्‌यो शुक्तिमें, आयो मन ललचाय ॥ १७ ॥ भयो बघूरा वायुमें, अग्नि चिनग बहु अंग ॥ बीजहिमें, तरुवर यथा, जलनिधि मध्य तरंग ॥ १८ ॥ मिश्रीकी तूंबी रची, रंगरूप ता माहिं ॥ खान लग्यो जब भर्म तजि, सो तब कवी नांहि ॥ १९ ॥ पावकमें दीपक घने, नभमें घट मठ नाम ॥ नीरमांझ ओरा भयो, यों जग आत्माराम ॥ २० ॥

टीकाः—पांच दोहोंका अर्थ स्पष्ट भाव यह हैः— जैसे घटादि मृदादिकोंका विवर्त होनेते मृदादिरूप हैं, तैसे सर्व जगत् ब्रह्मका विवर्त होनेते ब्रह्मरूप है १६—२०

दोहा—सत्य कहों तो है नहीं, मिथ्या कहों तु आहि ॥ कह अनाथ आश्चर्य महा, अकह कह कहिय काहि ॥ २१ ॥

टीका:—पूर्वोक्त विवर्तरूप जगत, सत्य कहे तो बनै नहीं, काहेते तीन कालमें जाका बाध न होवै सो सत्य कहिये है। प्रपंचका अधिष्ठान ज्ञानते बाध निश्चय होवै है, याते मिथ्या कहना संभवै है। मिथ्याकोही अनिर्वचनीय कहे हैं। जो किसी वचनका विषय न होवै ताको अनिर्वचनीय नहीं कहे हैं, किंतु सत्य असत्यते विलक्षणका नाम अनिर्वचनीय है। रूपवान् औ प्रातीतिक सत्ताका आश्रय सत्य विलक्षण शब्दका अर्थ है औ असद्विलक्षण कहिये बाधके योग्य ऐसा घटादि सर्व प्रपंच है। जो कहो अधिष्ठानका स्वरूपभी कह्या चाहिये तहां सुनोः—सो आश्चर्यरूप है, काहेते सर्वकूं प्रकाशता हुआभी आप किसीका विषय होवै नहीं याते वाणीकर कह्या जावै नहीं ॥ २१ ॥

सोरठा—भयो सु पंचम शांत, जगदा-
त्मक एकत्व कहि ॥ पढे होइ हत भ्रांत,
जगदात्मा चिद एक लहि ॥ २२ ॥

इति विचारमालायां जगदात्मवर्णनं नाम पंचमविश्रामः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ जगन्मिथ्यावर्णनं नाम

षष्ठविश्रामप्रारंभः ।

(७०) अब षष्ठे विश्राममें जगत्का अत्यंताभाव दिखायबे अर्थ, प्रथम शिष्यका प्रश्न लिखै हैं:—

शिष्य उवाच.

दोहा—भो भगवन् मोमन भयो, संशय देहु निवार ॥ जग मिथ्या किहि विध कह्या, मोप्रति कहो विचार ॥ १ ॥

टीका:—हे भगवन् ! पूर्व आपने जगत्कूं मिथ्या जिस रीतिसे कहा है, यह अर्थ मेरी बुद्धिमें आरूढ भया नहीं यातैं मेरे चित्तमें संदेह है ताकी निवृत्ति अर्थ आप पुनः सो विचार कहो जाते संदेह दूर होवै ॥ १ ॥

(७१) अब शिष्यके संदेह दूर करणे अर्थ, विद्वान्की दृष्टिमें अविद्या तत्कार्यरूप जगत अत्यंत असत्य है यह कहै हैं, काहेते यह शास्त्रमें कहा

है:—गुरुमुखात् तत्त्वमस्यादि महावाक्यके श्रवण कीये उदय भयी जो ब्रह्माकारवृत्ति, ता वृत्तिके उदयमात्रते ही कार्यसहित अविद्या न पूर्व थी, न अब है, न भविष्यत् होवैगी, यह तिस विद्वान्कूं प्रतीत होवै है; या अर्थके साधक दृष्टांतोंकूं कहे हैं:— ॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ जग मिथ्या दरसावत हैं:—

दोहा—शीतल जल मृगतृष्णको, गगन कमलकी वास ॥ सुंदर अति वंध्यासुवन, ऐसे जगत प्रकास ॥ २ ॥

टीका:—जैसे वासिष्ठमें मूर्ख बालककी प्रसन्नता अर्थ धात्रीने भविष्यत् नगरकी कथा श्रवण करवाई है, तैसे किसीने कहा मरुस्थलका जल अति शीतल है औ आकाशके कमलमें अति सुगंध है औ वंध्याका पुत्र वस्त्रोंभूषणोंके सहित सुंदर स्वरूपवान् है। हे शिष्य! ए पदार्थ जैसे अत्यंत असत भी अर्थाकार प्रतीत होवै हैं तैसे अत्यंत असत् जगत् अर्थाकार प्रतीत

होवै है ॥ २ ॥ पूर्वोक्त अर्थके साधक दृष्टांतोंको सप्त दोहोंकर कहे हैं:-

दोहा-ज्यों नभमें कल्पी घनी, पूतरि विविध अनेक ॥ करत युद्ध अति क्रोध-युत, ऐसो जगत विवेक ॥ ३ ॥ अनाथ स्वप्न काहू नहीं, दिसनाविषै भ्रम होय ॥ पूरव तज पश्चिम गयो, तिहि विषाद जग सोय ॥ ४॥ रविकी रश्मि समेटिके,करी गुंथ रचि माल ॥ पहिरे वंध्याको सुवन, शोभा बनी विशाल ॥ ५ ॥ ससे शृंगको धनुष करि, गगनपुरुष लिय जाय ॥ देखि माल लालच लग्यो, पुन पुन मांगत ताय ॥ ६ ॥ वा मांगत वह देत नहिं, बढ़ी परस्पर रार ॥ ना कछु भयो न है कछू, ऐसो जगत विचार ॥ ७॥ गगन

सिंधुकी लहरि ले, आन बनायो धाम ॥
ऐसे पूरण ब्रह्ममें, देखि जगत अ-
भिराम ॥ ८ ॥ मृगतृष्णाको नीर लै,
सींच्यो नभ अंभोज ॥ ता सुगंध आई
सरस, आहि जगत यह खोज ॥ ९ ॥

टीकाः—अर्थ स्पष्ट। भाव यह हैः—जैसे आका-
शादिकोंमें पुरुषकल्पित पुतली आदि पदार्थ अत्यंत
असत् हैं, तैसे ब्रह्ममें आकाशादि प्रपंच अत्यंत असत्य
है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

(७२) अब स्थूणाखनन न्यायकर पूर्वोक्त अर्थके
दृढ करनेको, तामें शिष्य शंका करे है,—

शिष्य उवाच ।

दोहा—जगत जगत सबकोई कहै, अरु
पुनि देखिय नैन ॥ सो मिथ्या किहि
विध कहो, आरत जन सुखदैन ॥ १० ॥

टीकाः—हे आरतजनोंकूं सुख देनेवाले श्रीगुरो !

संपूर्ण श्रुति स्मृति वचन जगतका सद्भाव कहे हैं। पुनः प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकरभी जगत प्रतीत होवै है, आप जगत्कूं अत्यंत असत्य किस रीतिसे कहो हो। जो जगत् अत्यंत असत्य होवै तो उत्पत्ति प्रतिपादक 'यतो वा इमानि भूतानि जायंते, तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः' इत्यादि वाक्य हैं, वे विषयके आभावते व्यर्थ होवैंगे 'जाते निश्चय करके ये भूत उत्पन्न होवै हैं,' 'ब्राह्मणप्रतिपाद्य वा मंत्रप्रतिपाद्य आत्माते आकाश उत्पन्न होवै है,' यह तिनका अर्थ है। प्राप्त सत वस्तुका निषेध होवै है, जगत अत्यंत असत् होवै तो निषेधप्रतिपादक 'तरति शोकमात्मवित्' इत्यादि वाक्य भी व्यर्थ होवैंगे औ कार्यके अभावते कारणरूप ईश्वरका अंगीकारभी निष्फल होवैगा; इत्यादि अनेक शंका मेरे तांई होवै हैं सो आप निवृत्त करो ॥ १० ॥

(७३) जगत्का अत्यंताभावरूप जो उत्तम सिद्धांत ताको हृदयमें धरके गुरु, जगत्का अनिर्वचनीयत्व दिखावते हुए शिष्यकी शंकाका समाधान करे हैं दोदोहोंकरः—श्रीगुरुरुवाच।

दोहा—रज्जु देखि प्राणी घने,कल्पैं बहुत प्रकार ॥ को तरुजर को सरप कहि को कहि पुहमिदरार ॥ ११ ॥ शुक्ति निरखि बहु भेद लहि, प्राणी कल्पे ताहि ॥ को भोडर को रजत कहि, को कहि कागद आहि॥ १२ ॥

दो दोहोंकी एकठी टीकाः—हे शिष्य! जैसे रज्जुका सामान्यरूप इदंताको देखके बहुत पुरुष बहुत अनिर्वचनीय पदार्थोंकी कल्पना करे हैंः—कोई कहै है यह वृक्षकी जड़ है, कोई सर्प कहे है, काहूको पृथिवीकी रेखा प्रतीत होवै है। शुक्तिके सामान्य इदम् अंशको देखके स्वस्वसंस्कारके अनुसार अनेक पदार्थोंकी कल्पना करे हैंः—कोई अबरक कल्पे है, कोई रजत, कोई कागदकी कल्पना करे है। यह सर्प रजतादि समग्र पदार्थ अनिर्वचनीय उत्पन्न होवै हैं। अनिर्वचनीय ख्यातिका संक्षेपते यह प्रकार हैः—सर्प संस्कार सहित पुरुषके दोषसहित नेत्रका रज्जुसे संबंध होवै है औ

रज्जुका विशेष धर्म रज्जुत्व भासे नहीं औ रज्जुमें जो मुंजरूप अवयव हैं सो भासे नहीं, किंतु रज्जुमें सामान्यधर्म इदंता भासे है। तैसे शुक्तिमें शुक्तित्व औ नीलपृष्ठता त्रिकोणता भासे नहीं, किंतु सामान्य धर्म इदंता भासे है; याते नेत्रद्वारा अंतःकरण रज्जुको प्राप्त होइके इदमाकार परिणामको प्राप्त होवै है; ता इदमाकार वृत्ति उपहित चेतननिष्ठ अविद्याके सर्पाकार औ ज्ञानाकार दो परिणाम होवै हैं। तैसे दंडसंस्कारसहित पुरुषके दोषसहित नेत्रका रज्जुके संबंधसे जहां वृत्ति होवै तहां दंड औ ताका ज्ञान अविद्याके परिणाम होवै हैं। मालासंस्कारसहित पुरुषके सदोष नेत्रका रज्जुसे संबंध होइके इदमाकार वृत्ति होवे, ताकी वृत्ति उपहित चेतनमें स्थित अविद्याका माला औ ताका ज्ञान परिणाम होवै है। जहां एकरज्जुसे तीन पुरुषनके सदोष नेत्रनका संबंध होइकै सर्प दंड माला एक एकका तिन्हको भ्रम होवै तहां जाकी वृत्ति उपहितमें जो विषय उपज्या है सो ताहीको प्रतीत होवै है अन्य-

को नहीं । इस रीतिसे रज्जु शुक्ति आदिकोंमें सर्प रजतादि औ तिनके ज्ञान अनिर्वचनीय उत्पन्न होवै हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

अब दृष्टांतकरि कहे अर्थको दार्ष्टांतमें जोड़े हैंः—

दोहा—पूरण अद्वय आतमा, अव्यय अचल अपार ॥ मिथ्याही कल्प्यो घनो, तामें यह संसार ॥ १३ ॥

टीकाः—व्यापक, द्वैतसे रहित, नाशते रहित, क्रियासे रहित, देशपरिच्छेदते रहित, जो आतमा, ताके बोधअर्थ,श्रुतिने तामें यह नानारूप संसार मिथ्या कल्प्या है । मिथ्याको ही अनिर्वचनीय कहे हैं । या पक्षको अंगीकार कियेसे पूर्वोक्त सर्व शंका निवृत्त होवै हैं; काहेते अनिर्वचनीय जगत्की उत्पत्ति कथन संभवै है, यातें उत्पत्तिबोधक वाक्य निष्फल होवै नहीं, तथा अधिष्ठान ज्ञानसे ताकी निवृत्ति भी संभवै है, यातें निवृत्तिबोधक वाक्य निष्फल होवै नहीं औ अनिर्वचनीय जगत्की

अनिर्वचनीय कारणताके संभवते ईश्वरका अंगीकार बी संभवै है ॥ १३ ॥

दोहा—आन भिन्न नहिं तोयते, बुदबुद फेन तरंग ॥ याप्रकार संसार यह, शुद्ध स्वरूप अभंग ॥ १४ ॥

टीकाः—बुदबुदे फेन लहरी यह जलते भिन्न सत्य नहीं, तैसे यह संसार भी शुद्धस्वरूप अधिष्ठान आत्माते भिन्नसत्तावाला नहीं; काहेते अध्यस्तकी सत्ता अधिष्ठानते भिन्न होवै नहीं, यह नियम है ॥ १४ ॥

(७४) ननु अधिष्ठानते अध्यस्तकी भिन्न सत्ता न होवै तो, देहादि अध्यस्त पदार्थोंमें गमनागमनादि व्यवहार न हुआ चाहिये ? यह आशंका कर कहे हैंः—

दोहा—पूरण आतममे जगत, कंचन मुहर प्रकार ॥ अद्वय अमल अनूप अज, मुद्रा नाम असार ॥ १५ ॥

टीकाः—यद्यपि पूर्णात्मासे जगत अनन्यरूप भी

है तथापि जैसे कंचनमें अनन्यरूप मोहरते संख्या परिमाण त्याग आदानादि व्यवहारकी सिद्धि होवै है तैसे आत्मासे अनन्यरूप देहादि व्यवहारकी सिद्धि होवै है । अन्य स्पष्ट ॥ १५ ॥

ननु अधिष्ठानसे अनन्यरूप देहादि पदार्थोंसे व्यवहार सिद्धि होवै तो अधिष्ठान विकारी हुआ चाहिये ? सो शंका बने नहीं:— काहेते शुद्ध ब्रह्मरूप अधिष्ठानसे देहादिकोंका संबंध नहीं, यह कहे हैं:—

दोहा—काष्ठमें रहिंटा भयो, रहिटामें भयो फेर ॥ पऱ्यो तूल ताफेरमें, भयो सूतको ढेर ॥ १६ ॥ वसन भयो तासूतमें, पूतरि वसन मझार ॥ आपसमें पूतरि सबै, करत परस्पर रार ॥ १७ ॥ काष्ठको अरु रारको, कहो कहा संबंध, तन विकार यों ब्रह्ममें, कल्पै प्राणी अंध ॥ १८ ॥

टीका:—तीन दोहोंका अर्थ स्पष्ट भाव यह है:—जैसे काष्ठका औ वस्त्रमें पुतलियोंके युद्धका परस्पर कछु संबंध नहीं; तैसे काष्ठस्थानापन्न शुद्ध ब्रह्ममें, काष्ठमें चरखेकी न्याई कल्पित माया औ तामें कार्यकी अभिमुखतासे तमोप्रधानतारूप फेर औ तामें तूलस्थानीय पंच आकाशादि सूक्ष्म भूत, तिनते सूत्रस्थानीय पंच स्थूल भूत, तिनमें ताने पेटे स्थानी पचीस प्रकृति, तिनते चतुर्दश लोकरूप वस्त्र तामें पुतलियां स्थानी देव मनुष्यादि चार खानोंमें होनेवाले शरीर, तिन शरीरोंके जन्मादि विकार असंग ब्रह्ममें संभवैं नहीं; जो कहो अज्ञानी तामें कल्पना करे हैं? तहां सुनो:— जैसे सूर्यमें उल्लूकर कल्पे अंधकारसे सूर्यकी क्षति नहीं; तैसे अज्ञोंकर कल्पित विकारोंसे ब्रह्मकी शुद्धता बिगरे नहीं ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

(७५) ननु जगत् हैही नहीं तो अधिष्ठानज्ञानते निवृत्त क्यो होवै है? तहां सुनो:—

दोहा—ब्रह्म रतन निर्मोल निज, तामें

क्रांति अनंत ॥ है नहीं कहत नहीं बने, ऐसो जग दरसंत ॥ १९ ॥

टीका:—जैसे अमोलिक जो रत्नमणि, तामें जो अनंत कांति प्रतीत होवै हैं; सो ता रत्नमणितें भिन्न हैंही नहीं तो तिनकी निवृत्ति कहना कैसे बने । तैसे ब्रह्ममें जगत् हैही नहीं तो ताकी निवृत्ति कैसे कहैं। जो कहो वेदांतशास्त्रमें तत्त्वज्ञानसे जगत्की निवृत्ति कही है? सो नित्य निवृत्तकी निवृत्ति कही है। जैसे रज्जुमें सर्प नित्य निवृत्त है, तथापि ताके ज्ञानसैं नित्य निवृत्त सर्पकी निवृत्ति होवै है ॥ १९ ॥

पूर्व कहे अर्थकूं अन्य दृष्टांतकर दृढ करै हैं:—

दोहा—कहि अनाथ कासों कहों, आद्य मध्य अरु अंत ॥ ज्यों रविमें नहीं पाइये, निशि वासरको तंत ॥ २० ॥

टीका:—स्वामी अनाथजी कहे हैं:—अधिष्ठान चेतनमें जगत् स्वरूपसे है नहीं तो, ताके उत्पत्ति औ

स्थिति औ नाश कैसे कहैं। जैसे सूर्यमें रात्रि औ दिनका स्वरूप नहीं पाईता तो, तिनकी उत्पत्ति आदिक कैसे बनै ॥ २० ॥

दोहा–षष्ठम जगत असत कहत, भयो सु अंतर ध्यान ॥ सहविलास अज्ञान हत, नष्ट होत जिमि ज्ञान ॥ २१ ॥

इति श्रीविचारमालायां जगन्मिथ्यावर्णनं नाम षष्ठो विश्रामः समाप्तः ॥ ६ ॥

अथ शिष्यअनुभवर्णनं नाम सप्तमविश्रामप्रारंभः ॥ ७ ॥

(७६) अब सप्तम विश्राममें गुरुके प्रति नमस्कार करके शिष्य, गुरुकृत उपकारको सूचन करता हुआ, गुरुद्वारा ज्ञात अर्थको प्रगट करे हैः–

शिष्य उवाच।

दोहा–वारंवार प्रणाम मम, श्रीगुरुदीन दयाल॥ जगत भ्रम बहु नास्यो, सुनि तव वचन रसाल ॥ १ ॥

टीका:—हे दयालो श्रीगुरो! करुणारसके सहित आपके वचनको श्रवण करके, जगत्रूप भ्रम मेरा निवृत्त भया है, ताते आपके प्रति वारंवार मेरा नमस्कार है। ननु गुरुद्वारा अमोलक तत्त्वज्ञानको पाइकर कोई अपूर्व पदार्थ भेट धऱ्या चाहिये, केवल नमस्कार उचित नहीं? सो शंका बने नहीं:—काहेते या प्रपंचमें दो पदार्थ हैं, एक अनात्म पदार्थ है, अपर आत्म पदार्थ है। तिनमें अनात्म पदार्थ असत् जड दुःखरूप होनेते अति तुच्छ है, देने योग्य नहीं, अपर जो आत्मपदार्थ है, सो गुरुके प्रसादते प्राप्त भया है, तामें [१]प्रदानादिक्रियाके अभावते भी दिया जावै नहीं। याते नमस्कारही बने है॥ १॥

पुनः गुरुकृत उपकारको शिष्य प्रगट करे हैः—

दोहा—भो भगवन् तुम मयाते, भयो विविगत संदेह॥ शुद्ध स्वरूप लह्यो भले, विसऱ्यो देह अदेह॥ २॥

टीकाः—हे भगवन्! आपके प्रसादते प्रमाण प्रमेयगत संदेहते रहित, सर्व विकारशून्य, चैतन्य, आनंदरूप, आत्माको भली प्रकार मैंने जान्या हैं। जो पूर्व विस्मरण भया था। अब देहमें स्थित हुआभी देहसंबंधतें रहित हूं. जैसे मथन कर दधिसे पृथक् किया नवनीत; तक्रमें स्थित हुआ भी तासे भिन्न रहे है ॥ २ ॥

(७७) अब शिष्य, अपना अनुभव प्रगट करे हैः—

दोहा--अज्ञ तज्ञ नाहिं शुभाशुभ, नाहिं ईश्वर नाहिं जीव ॥ सत्य झूठ भोमें नहीं, अमल समल त्रिय पीव ॥ ३ ॥

टीकाः—हे भगवन् ! ना मैं अज्ञानी हूं, काहेते अज्ञान जाको होवै सो अज्ञ कहिये है औ ज्ञान जाको होवै सो ज्ञानी कहिये है। सो अज्ञानादि सब अवस्था आभासकी हैं, सो चिदाभासरूप जीव मैं नहीं, याते विधिनिषेध भी मुझपर नहीं। जीवत्वके अभावते मायामें आभासरूप ईश्वर भी मुझपर नहीं, काहेते सत-

स्वरूप मुझमें मिथ्या पदार्थ कैसे बने? शुद्ध अंतःकरण जिज्ञासु औ मलिन अंतःकरणरूप विषयी भी मैं नहीं। औ स्त्री पुरुष भाव भी मुझमें नहीं, स्थूल शरीरका धर्म होनेते ॥ ३ ॥

पुनः स्थूलशरीरनिष्ठ धर्मोंका आत्मामें अभाव दिखावै हैंः—

दोहा—आश्रम बरन न देव नर, गुरु सिख धर्म न पाप ॥ पूरण आतमा एक रस, नहिं घट बढ़ माप अमाप ॥ ४ ॥

टीकाः—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, औ संन्यासः ए चतुर् आश्रम औ ब्राह्मणादि चार वर्ण, देवभाव औ मानुषभाव औ गुरुशिष्यभाव औ पुण्यपापरूप क्रिया, ए समग्र स्थूल शरीरका धर्म होनेते मुझमें नहीं; काहेते मैं पूर्णात्मा औ अविकारी हूं, वृद्धि औ क्षयसे रहित हूं औ ह्रस्वदीर्घ भावते भी रहित हूं। यही ध्यानदीपमें कहा हैः—“वर्णाश्रमादि धर्म, देहविषे मायाकर कल्पित हैं; बोधरूप आत्माके नहीं, यह विद्वानका निश्चय है”४

अब सूक्ष्मशरीरादि प्रपंचका आत्मामें अभाव दिखावे हैं:—

दोहा—मन बुद्धि इंद्रिय प्राण नहिं, पंच-भूत हू नाहिं ॥ ज्ञाता ज्ञान न ज्ञेय कछु, नहिं सब हूं सबमाहिं ॥ ५ ॥

टीका:—मनआदि सप्तदश अवयवरूप लिंगशरीर औ आकाशादि पंचभूत औ साभास अंतःकरणरूप ज्ञाता औ अंतःकरणका परिणाम साभास वृत्तिरूप ज्ञान औ घटादि विषयरूप ज्ञेय; ए संपूर्ण मेरे आत्मामें वास्तव नहीं औ मैं सर्वमें स्थित हूं। सो गीतामें कहा है:— "योगकर जीत्या है मन जिसने, सो महात्मा, सर्व भूतोंमें अपने आत्माकूं स्थित देखता है औ सर्व भूतोंको अपने आत्मामें अभिन्न देखता है" ॥५॥

सोरठा—मैं चैतन्य स्वरूप, इंद्रजालवत जगत यह ॥ मैं तू कथा अनूप, यह वह कहत न संभवै ॥ ६ ॥

टीकाः--जातैं मैं चैतन्य आत्मा हूं औ यह जगत् इंद्रजालकी न्याईं मिथ्या है, तातै मैं पंडित हूं तू मूर्ख है, यह हमारा शत्रु है, वह मित्र है, यह जो उपमाते शून्य जगत्संबंधी कथा है, सो मेरे आत्मामें कैसे बने। यह जगत इंद्रजालकी न्याईं मिथ्या है, यह तृप्तिदीपमें कहा हैः- " यह द्वैत अचिंत्यरचनारूप होनेते मिथ्या है " ॥ ६ ॥

पुनः आत्मामें देहादि पदार्थोंका अभाव कहे हैंः—

दोहा—देही देह न हौं कछु, मुक्त बद्ध नहिं होय॥ यती न विषयी तप अतप, ना हौं एक न दोय ॥७॥ पूर्व पश्चिम ऊर्ध्व अध, उत्तर दच्छिन नाहिं ॥ लघु दीर्घ न्यारो मिल्यो, नहिं बाहिर नहिं माहिं ॥ ८ ॥ नहि उत्पत्ति न वृद्धि लय, रूप रंग रस भेद ॥ नहिं योगी भोगी नहीं, नाहिं स्थिर नहिं खेद ॥ ९ ॥

टीका:-तीन दोहोंका अर्थ स्पष्ट भाव यह है:- यद्यपि देहादि पदार्थ सर्वको अपने आत्मामें प्रतीत होवै हैं तथापि उत्तम भूमिकामें आरूढ विद्वानको अपने आत्मामें प्रतीत होवै नहीं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

(७८) ननु एकही आत्मामें विद्वानते भिन्न अन्योंको देहादि प्रतीत होवै है, औ विद्वानको होवै नहीं यह कथन बनै नहीं ? तहां सुनो:-

दोहा-मलिन नयनकरि देखिये, सब कछु सबही भाय ॥ अमल दृष्टि जब रवि लह्यो, तब रविही दरसाय ॥ १० ॥

टीका:-जैसे जलादि उपाधि दृष्टिकर देखिये तब प्रतिबिंबताकर आदित्यमें अनेकता औ चंचलता आदि सर्व विकार प्रतीत होवै हैं जब उपाधिदृष्टिको त्यागके सूर्यकी ओर देख्या तब अद्वितीय प्रकाशरूप आदित्यही प्रतीत होवै है ॥ १० ॥

अब दृष्टांतकर कहे अर्थको दार्ष्टांतमें जोड़े हैं:-

दोहा–ऊंच नीच निरगुण गुणी, रंक नाथ अरु भूप॥ हूं घट बढ़ कासों कहूं, सब आनंदस्वरूप ॥ ११ ॥

टीका:–वर्णाश्रमकर यह ऊंच है, तथा यह नीच है, यह दैवी संपत्तिसे रहित पामर है, यह उत्तम जिज्ञासु है, यह धनके अभावतैं कंगाल हैं, यह ग्रामाधीश है औ यह राजा हमारेकर पूज्य है, ऐसी प्रतीति अज्ञानरूप उपाधिके बलकर अज्ञोंको होवै है; परंतु निवारण आत्माके साक्षात्कारवाला जो मैं, सो पूर्व उक्त रीतिसे किसके प्रति अधिक न्यून कहूं; जाते सर्व मोकूं आनंद स्वरूप प्रतीत होवै है। सो कहा है हस्तित्त्वमुक्तावलिमें:–"परमात्माके ज्ञानसे देह अभिमानके निवृत्त भये, जहां जहां विद्वान्‌का मन जावै, तहां तहां अद्वितीय ब्रह्मही देखे है" ॥ ११ ॥

जगत्‌की प्रतीतिमें मुख्य कारण अज्ञान कहा। अब अवांतर कारण मन कहे हैं:–

दोहा–मन उन्मेष जगत भयो, बिन उ-

नमेष नसाय ॥ कहो जगत किंत संभवै, मनही जहां विलाय ॥ १२ ॥

टीकाः—मनके फुरनेसे जगत् प्रतीत होवे है औ मनके शांत भये जगत् प्रतीत होवै नहीं. जो कहो यह कैसे निश्चय होवै ? तहां सुनोः— जाग्रत स्वप्नमें मनके सद्भावतें स्थूल सूक्ष्म जगत् प्रतीत होवे है औ सुषुप्तिमें मनके विलयते जगत् प्रतीत होवे नहीं. या अन्वयव्यतिरेक युक्तिसे जगत् प्रतीतिमें मनकी कारणता निश्चय होवै है। जहां ब्रह्मरूप ज्ञात अधिष्ठानमें मनकाही अभाव निश्चय होवे है, तहां जगत्की प्रतीति कैसे संभवै ॥ २२ ॥

(७९) पूर्व कहे अर्थको पुनः प्रगट करे हैः—

दोहा—नाहिं कारण नहिं कार्य कछु, नाहिं न काल नहिं देश ॥ शिव स्वरूप पूरण अचल, सजाति विजाति न लेश ॥ १३ ॥

टीकाः—कल्याणस्वरूप, विभु, क्रियासे रहित मेरे

आत्मामें, कार्यकारणभाव नहीं, काहेते मृत्तिकादिकोंकी न्याई कारण सावयवही, होवे है, मैं निरवयव हूं, याते कारण नहीं. औ घटादिकोंकी न्यांई जो कार्य होवे सो अनित्य होवे है, मैं नित्य हूं याते कार्य नहीं. तथा सजातीय विजातीय स्वगत भेद ब्रह्मरूप आत्मामें नहीं, काहेते जैसे पटका पटमें भेद सो सजातिकृत भेद है, तैसे ब्रह्मके सदृश अन्य ब्रह्म होवै; तब सजातिकृत भेद ब्रह्ममें होवै, ब्रह्मके सदृश अन्य ब्रह्म नहीं; यातैं ब्रह्ममें सजातिकृत भेद नहीं। जैसे पटमें घटका भेद है सो विजातिकृत भेद है, तैसे ब्रह्मके सामान सत्तावाला कोऊ विजाति नहीं, याते ब्रह्ममें विजातिकृत भेद नहीं । यद्यपि जीव ईश्वर, ब्रह्मसे विजाति हैं; तिनोंका भेद ब्रह्ममें बने है; तथापि जीव ईश्वर मायिक होनेते मिथ्या है, यातैं तिनोंका भेद ब्रह्ममें नहीं। यह पंचदशीमें कहा है । औ जैसे पटमें तंतुका भेद है सो स्वगत भेद है। तैसे ब्रह्म सावयव नहीं, याते ब्रह्ममें स्वगत भेद नहीं ॥ १२ ॥

(८०) ननु ता अधिष्ठानका स्वरूप कहा चाहिये ? तहां सुनोः—

दोहा—एकहु कहत बनै नहीं, दोइ कहौं किहि भाय ॥ पूरणरूप विहायसी, घट बढ़ कह्यो न जाय ॥ १४ ॥

टीका:—एकत्व संख्यावाचक एकशब्दकीही नाम जाति गुण क्रियाके अभावतैं ब्रह्ममें प्रवृत्ति बनै नहीं,तो द्वित्वसंख्यावाचक दो शब्दकी प्रवृत्ति कैसे बनै ? काहेते गुण क्रिया आदिकही शब्द प्रवृत्तिके निमित्त हैं, सो ब्रह्ममें नहीं, याते जैसे होवे तैसे पूर्णरूपको त्यागकर अधिक न्यून भाव ब्रह्ममें कह्या जावै नहीं ॥ १४ ॥

अब त्रिते शरीर औ अवस्थाके अभिमानी विश्वादिकोंका आत्मामें निषेध करे हैं:—

दोहा—विश्व न तैजस प्राज्ञ कछु, नहि तुरिया तामाहिं॥ स्वस्वरूप निज ज्ञानघन, मैं तू विव तहँ नाहिं ॥ १५ ॥

टीका:—तुरीय नाम साक्षीका है। अन्य स्पष्ट १५

(८१) अब उक्त अर्थमें शंकाको कहे हैं:—

दोहा—जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिके, अभिमानी जे आहिं ॥ जो सबको अनुभव करै, शिव-स्वरूप कहि ताहि ॥ १६ ॥

टीका:—ननु पूर्व साक्षीका निषेध किया सो बनै नहीं, काहेते जाग्रतका अभिमानी विश्व, स्वप्नका अभिमानी तैजस, सुषुप्तिका अभिमानी प्राज्ञ, जाग्रतादि अवस्थाके सहित सर्वको जो प्रकाशे ताको शास्त्रोंमें शिवस्वरूप कहा है; याते ताका निषेध बने नहीं ॥ १६ ॥

(८२) अब वक्ष्यमाण दोहेवाला को शंकाका समाधान करे हैं:—

नहीं । यद्यपि
ा भेद ब्रह्ममें बन
मिथ्या है. याहैं

दोहा—साधन साध्य कछु [illegible] द्ध नहिं कोय ॥ प्रमाण प्रमाता को कहै, अनाथ प्रमेय न होय ॥ १७ ॥

टीका:—जाकर साध्यकी सिद्धि होइ सो साधन औ साधनकर सिद्ध होयबे योग्य साध्य औ साधनकर साध्यकी प्राप्तिवाला सिद्ध औ प्रमाण प्रमाता प्रमेयरूप

त्रिपुटी या साक्ष्यके अभावते साक्षी धर्मका निषेध कीया हैं; स्वरूपसें चैतन्यका निषेध नहीं किया ॥ १७ ॥

पुनः वही अपवाद कहै हैं:—

दोहा—शास्ता शास्त्र सु को नहीं, नहिं भि-क्षुक नहिं दान ॥ देश न काल न वस्तु गुण, वादी वाद न हान ॥ १८ ॥ विधि निषेध नहिं थप अथप, नहिं प्रभु नहिं को दास ॥ केवल शुद्ध स्वरूप हों, पूरण स्वतह प्रकाश ॥ १९ ॥

सोरठा—ध्याता ध्यान न ध्येय मम, नि-ज शुद्ध स्वरूपमें ॥ उपादेय नहिं हेय, सर्वरूप सबते परे ॥ २० ॥

टीका:—अज्ञानके अभावते मुझपर शिक्षा करने-वाला औ शास्त्र नहीं औ जिज्ञासाके अभावते मैं भि-क्षुभी नहीं औ उदारताके अभावते दानी नहीं औ हृ-दय कंठ नेत्ररूप देश, जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिरूप काल,

स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर वस्तु, औ सत्वादि तीन गुणभी मुझमें नहीं। वाद करनेवाला औ वितंडा जल्प अध्यात्मादि वाद औ ताकर होवै जो जय पराजय, सोभी नहीं ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

(८३) दोहा--कह्यो शिष्य अनुभव सबै, रह्यो मौन गहि सोय॥ बोले दास अनाथ कहि, सुगुरु शिष्य तन जोय ॥ २१ ॥

टीका:-- स्वामी अनाथदासजी कहे हैं:--शिष्य गुरुद्वारा अनुभव करे समग्र अर्थको कहकर सो मौनको अंगीकार कर स्थित भया। तब गुरु, शिष्यकी ओर देखकर शिष्यकी परीक्षा अर्थ, वक्ष्यमाण रीतिसे बोलते भये ॥ २१ ॥

दोहा--स्वतः शिष्य अनुभव भयो, इति अष्टम प्रति आख ॥ गुरु यामें शंका करे, उत्तर तिन प्रति भाष ॥ २२ ॥

इति श्रीविचार० शिष्यअनुभववर्णनं नाम सप्तमो विश्रामः समाप्तः ॥ ७ ॥

अथ आत्मवान् स्थितिवर्णनं नाम
अष्टमविश्रामप्रारंभः ॥ ८ ॥

[८४] अब अष्टम विश्राममें कथन करना जो अर्थ, ताकी सूचक ग्रंथकारकी उक्ति आदिमे लिखे हैं:-

दोहा-अनुभव अमृत शिष्यके, उदय भयो चित चैन ॥ लैन परीक्षाको कहै गुरु करुणारस बैन ॥ १ ॥

टीका:-अद्वितीय निश्चयरूप अमृतके उदय भये से शिष्यके हृदयमें आनंदका आविर्भाव भया है वा नहीं, या संदेहकी निवृत्तिरूप परीक्षाके अर्थ गुरु, करुणारससे मिले वक्ष्यमाण वचन कहे हैं। ननु महावाक्यरूप प्रमाणजन्य ज्ञानके उदय भये आनंदका आविर्भाव अवश्य होवै है, तामें संदेह संभवै नहीं ? तहां सुनो:- जैसे नवीन कंटकका आकार यथावत् प्रतीतभी होवै है, तोभी कोमलतारूप प्रतिबंधके सद्भावतैं ता कंटकसे वेधनादिरूप कार्य होवे नहीं। तैसे

एकवार महावाक्यके श्रवणकर उदय भये तत्त्वज्ञानसे संशयादिरूप प्रतिबंधके सद्भावतैं आनंदाविर्भावरूप कार्यकी सिद्धि होवै नहीं । यातैं तामैं संदेह संभवे हैः—

अब परीक्षाका प्रकार कहे हैंः—

दोहा—परीक्षा निज विज्ञानकी, लेत खंड व्यवहार ॥ इस्थिति आतमवानकी, उपदेशत निरधार ॥ २ ॥

टीकाः—विद्वानकी प्रवृत्तिरूप व्यवहारके निषेधद्वारा गुरु, शिष्यके ज्ञानकी परीक्षा करे हैंः—काहेते भिक्षा भोजन औ कौपीन आच्छादनके ग्रहणते अधिक प्रवृत्ति विद्वानकी भोग्योंमें होवै नहीं; यह पक्ष बहुत ग्रंथोंमें लिख्या है । या पक्षको आश्रय करके गुरु, ज्ञानवान्की उदासीनतारूप स्थितिको अज्ञ औ मुमुक्षु औ बद्ध ज्ञानीते भिन्नकर उपदेश करै हैं ॥ २ ॥

(८५) श्रीगुरु, वक्ष्यमाण वचन कहे हैंः—

श्रीगुरुरुवाच ।

दोहा—जो कहि करहिं कहा विषय, भ-

यो ज्ञान उद्योत ॥ विषय संग मति भंग ह्वै, ज्ञान शिथिलता होत ॥ ३ ॥

टीका:—हे शिष्य ! जेकर तूं ऐसे कहे, एकवार महावाक्यके श्रवणतैं ज्ञानके उदय भये पुनः विषयोंमें प्रवृत्तिसे मेरी क्या हानि है, यह तेरा कथन संभवै नहीं; काहेते विषयोंके संबंधसे तत्त्वविचारवती बुद्धि नष्ट होवै है औ विचारके अभावते ज्ञातवस्तुमें संदेहरूप शिथिलता ज्ञानमें होवै है ॥ ३ ॥

अब योग्यताके अभावते विद्वानकी प्रवृत्तिका अभाव दिखावै हैं:—

दोहा—जान्यो अविनाशी अजर, अद्वय रूप अपार ॥ जग आसक्ति न संभवै, सुन शिष्य सत्य विचार ॥ ४ ॥

टीका:—हे शिष्य ! महावाक्यके श्रवण कर नित्य नवीन औ नाशते रहित प्रत्यक् आत्माकूं जब परिच्छेदते रहित अद्वय आनंदरूप जान्या, तब भोगरूप ज-

गत्में आसक्ति संभवै नहीं । जैसे चक्रवर्ती राजाको ग्रामाध्यक्षके भोगकी इच्छा बनै नहीं तैसे । जो कहे चित्त निरालंब रहे नहीं, तो सत्य वस्तुके चिंतनरूप विचारको निरंतर कर ॥ ४ ॥

अब व्यतिरेकमुखसे ज्ञानवान्की प्रवृत्तिका अभाव कहे हैं:—

दोहा—शुद्ध स्वरूप लह्यो नहीं, उद्यो न निर्मल ज्ञान ॥ मलिन विषय व्यवहार रति, तबलग होत अजान ॥ ५ ॥

टीका:—तबलगही अज्ञ पुरुषकी अविद्याके कार्य शब्दादि विषयोंमें औ कायिक वाचिक मानसिक क्रियामें प्रीति होवै है, जबलग संशय विपर्ययसे रहित तत्त्वज्ञानकर अपने आत्माको ब्रह्मरूप नहीं जाने है । जैसे खल खानेमें पुरुषकी रुचि तबलग होवै है, जबलग यथारुचि पायसादि उत्तम भोजनोंकी प्राप्ति नहीं होवै है५

पुनः विधिमुखकर प्रवृत्तिका अभाव कहे हैं:—

दोहा—जो पूरण आतम लह्यो, तौ क्यौं रति व्यवहार॥ सोऽहं जान सुहोत क्यौं, जग जन दीन प्रकार॥ ६॥

टीका:—हे शिष्य! जो तू ऐसे कहे, मैं आत्माकूं पूर्ण ब्रह्मरूप जान्या है, मुझपर विधि निषेध कहां है; तो प्रवृत्तिरूप व्यवहारमेंभी प्रीति बनै नहीं, काहेते जाके आनंदके लेशते सारा विश्व आनंदित है सो आनंदस्वरूप ब्रह्म मैं हूं ऐसे जिसने जान्या है सो महात्मा संसारी जीवोंकी न्यांई दीन क्यों होवै है, अर्थात् नहीं होवै है॥ ६॥

ऐसे ज्ञानके साधनोंपर ग्रंथोंका तात्पर्य कहकर, अब शिष्यके प्रति विषयोंते उपराम करे हैं:—

दोहा—मुक्ति विषय वैरागजो, बंधन विषय स्नेह॥ यह सब ग्रंथनको मतो, मन मानै सु करेह॥ ७॥

टीका:—हे शिष्य! विषयोंमें जो वैराग्य है सो

मोक्षका साधन होनेते मोक्षही है औ विषयोंमें जो स्नेह है सो बंधका हेतु होनेते बंधन है। सो कहा है ग्रंथांतरमें:- "बद्धो हि को यो विषयानुरागी को वा विमुक्तो विषये विरक्तः" "विषयोंमें अनुराग बंध है औ विषयोंमें वैराग्य मोक्ष है" औ "रागो लिंगमबोधस्य चित्तव्यायामभूमिषु" "चित्तके विचरनेकीयां भूमियां जो शब्दादिक विषय, तिनमें जो राग है सो अज्ञानका चिह्न है"। यातेभी ज्ञानवान्की प्रवृत्तिका अभावही निश्चय होवै है। सर्व ग्रंथोंका या अर्थमेंही तात्पर्य है, इनमेंसे जामें तेरी रुचि होवै सो कर। यद्यपि पूर्वोक्त सर्व ग्रंथ, ज्ञानके मुख्य साधन वैराग्यकी प्रधानताके कहनेते मुमुक्षुपर हैं औ शिष्य अद्वैतनिष्ठाकूं प्राप्त भया है, याते ताप्रति यह कथन संभवै नहीं; तथापि 'वादी भद्रं न पश्यति' 'वादी पुरुष कल्याणको नहीं देखे है'। या न्यायकर गुरुने शिष्यके सिद्धांतमें आशंका करी है, याते यह कथन संभवै है ॥ ७ ॥

अब गुरुकी दयालुताको प्रकट करते हुए ग्रंथकार कहे हैं:-

दोहा–कृपा करत शिषपर घनी, गुरु शरणाई राइ ॥ इस्थिति आतमवानकी, कहि पुनि पुनि दरसाइ ॥ ८ ॥

टीकाः– जाते गुरु शरणागतपालकोंमें मुख्य हैं, ताते शिष्यपरभी बहुतसी कृपा करते हुए ज्ञानवानकी उदासीनतारूप स्थितिको दृष्टांतोंसे वारंवार कहे हैं॥८॥

अब अधिष्ठानते भिन्न जगतमें सत्य बुद्धिके अभावतेभी विद्वानकी प्रवृत्ति संभवै नहीं, यह कहे हैंः–

दोहा–जैसे भूंजे अन्नमें, उद्भवता भई छीन ॥ तैसे आतमवानकी, भई जगत मति लीन ॥ ९ ॥

टीकाः–जैसे केवल वह्निकर पक्क अन्नमें अंकुर उत्पन्न करनेका सामर्थ्य रहे नहीं, तैसे अधिष्ठानके ज्ञानकर ज्ञानवान्की जगतमें सत्यत्व बुद्धिके अभावते प्रवृत्ति संभवै नहीं ॥ ९ ॥

नतु ज्ञानवानोंकी निष्ठा भिन्न होनेते काहूकी प्र-

वृत्तिमें निष्ठा होवै है, काहूकी निवृत्तिमें निष्ठा होवै है, याते केवल निवृत्ति कथन ज्ञानवान्का संभवै नहीं, यह कहै हैं:—

दोहा:—अनाथ सुज्ञानी कोटिको, निश्चय निजमत एक ॥ एक अज्ञानीके, हिये, वरतत मते अनेक ॥ १० ॥

टीका:—अनंत ज्ञानियोंका स्वरूपमें निष्ठारूप मत निश्चयकर एकही है, अरु जो कहो निष्ठारूप मत कौन है? तहां सुनो:—श्लोक "किं करोमि क्व गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम् ॥ आत्मना पूरितं सर्वं महाकल्पांबुना यथा" "जैसे महाकल्पमें जलकर सर्व स्थान पूर्ण होवै हैं, तैसे मेरे आत्माकर सर्व पूर्ण हैं; ताते मैं क्या करौं, कहां जावौं, क्या ग्रहण करौं, औ किसका त्याग करौं"। सर्व विद्वानोंका यही निश्चय है औ एक अज्ञानीके हृदयमें अनेक निश्चय होवै हैं सो कहे जावें नहीं, काहेते वसिष्ठजीने रामचंद्रके प्रति कहा है:—"हे राम ! मुझसे आदि लेके सर्व ज्ञानवानोंका

अद्वितीय निश्चय है औ अज्ञानियोंके निश्चयको हम नहीं जानते " ॥ १० ॥

ननु स्वकृत ज्ञानवान्की प्रवृत्ति मत होवो, परंतु परकृत प्रवृत्ति संभवै है ? यह आशंका कर उत्तर कहे हैं:—

दोहा—सेवा बहुत प्रकार पुन, अंग त्रास करे कोय ॥ ज्ञानी आपनपो लहै, तृप्त कुप्त नहिं होय ॥ ११ ॥

टीका:—ननु स्वकृत विद्वान्की प्रवृत्ति मत होवो, परंतु कोऊ श्रद्धालु पुरुष वस्त्र भोजनादिकोंकर विद्वान्के शरीरकी सेवा करे, पुनः कोऊ निर्दय पुरुष अपने स्वभावके वशते यष्टिकादिकोंके प्रहारते विद्वान्के शरीरमें पीडा करे; तिनके प्रति वर शापके अर्थ प्रवृत्ति संभवे है ? सो शंका बनै नहीं:—काहेते जैसे पुरुषका हस्तरूप अवयव, मुखरूप अवयवकी पालना करे है, औ दंतरूप अवयव जिह्वारूप अवयवको काटे तब पुरुष सर्वको अपने अवयव जानके क्रोधादि करे

नहीं। तैसे ज्ञानवान्‌भी सेवा करनेवालेको औ पीड़ा कर्त्ताको अपने अवयव जाने है; याते तृप्त कुपित होवै नहीं। अथवा आपनपो लहै, याका यह अर्थ है:— ज्ञानवान् सुख दुःख अपने पूर्वकृतका फल जाने है, याते तृप्त कुपित होवै नहीं। सो कहा है अध्यात्ममें:— अपने पूर्वले इकत्र करे कर्महीं सुख दुःखके कारण हैं॥ ११॥

ननु अध्यात्मादि तीन तापोंकी निवृत्ति अर्थ विद्वान्‌की प्रवृत्ति संभवे है? तहां सुनो:—

दोहा—शांतरूप तिनको जगत, जे उर शांत महंत॥ त्रिविध ताप निजउर जरत, ते जग जरत लहंत॥ १२॥

टीका:— अज्ञानके सद्भावते अध्यात्मादि तीन तापोंकर जिनके चित्त तपायमान हैं ते अज्ञ पुरुष सर्व जगत्‌को तपायमान देखे हैं, तिनकी ही तापोंकी निवृत्ति अर्थ प्रवृत्ति संभवे है, औ जो महानुभाव अज्ञान्की

निवृत्तिद्वारा सर्व इच्छाओंकी निवृत्तिते शांतचित्त हैं तिन विद्वानोंको सर्व जगत् सुखरूप प्रतीत होवै है, याते तापोंकी निवृत्ति अर्थ विद्वान्की प्रवृत्ति संभवै नहीं। सो तृप्तिदीपमें कहा हैः—जब यह विद्वान् अपने आत्माको इस रीतिसे जानता है 'यह प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्म मैं हूं तब किसकी इच्छा करता हुआ औ किसकी कामना अर्थ शरीरको आश्रय करके तपायमान होवै है"१२

ननु अंतरसुखकी उपलब्धिसे विद्वान्को सर्व जगत् सुखरूप प्रतीत होवै, तो विषयी औ उपासककोभी सुखकी उपलब्धिसे सर्व जगत् सुखरूप प्रतीत हुआ चाहिये? तहां सुनोः—

दोहा—विषयानंद संसार है, भजनानंद हरिदास ॥ ब्रह्मानंद जीवन्मुक्त, भई वासना नास ॥ १३ ॥

टीकाः—विषयी पुरुषोंको स्रक् चंदन वनिता आदि विषयोंकी समीपतासे आनंद होवै है, याते क्षण

एक है औ उपासक पुरुषको भी ध्येयाकार वृत्तिरूप भजनद्वारा आनंदका लाभ होवै, है, सोभी प्रयत्नसाध्य होनेते सदा रहे नहीं, याते तिन दोनोंको सुख अभाव कालमें जगत् सुखरूप प्रतीत होवै नहीं औ जीवन्मुक्त विद्वान्को सर्व वासनाके अभावते ब्रह्मानंद निरावरण प्रतीत होवे है, आनंदस्वरूप ब्रह्मको सर्व रूप होनेते विद्वान्को सर्व जगत् सुखरूप प्रतीत होवै है ॥ १३ ॥

पूर्व कहे अर्थको पुनः प्रपंचन करे हैं:—

दोहा—मुक्त्यादिक इच्छा नहीं, निस्पृह परम पुमान ॥ आत्मसुख नित तृप्त जे, तिन समान नहिं आन ॥ १४ ॥

टीका:—जे महात्मा मुक्तिकी इच्छाते रहित हैं, आदि शब्दकर ज्ञान औ ज्ञानके साधन श्रवणादिकोंकी इच्छाते रहित हैं, औ निस्पृह कहिये या लोक परलोकके भोगोंकी इच्छाते रहित हैं, जाते आत्मानंदकर नित्य तृप्त हैं; ते सर्वोत्कृष्ट पुरुष हैं । याते आन जे विषयी औ उपासक हैं ते तिनके तुल्य नहीं ॥ १४ ॥

पूर्व कही जो विद्वान्की निस्पृहता, तामें हेतु कहे हैं:—

दोहा—दृष्ट पदारथको भयो, जिनके सह-ज अभाव॥ कहा गहै त्यागै कहा, छूट्यो चाव अचाव॥ १५॥

टीका:—जिन महात्माओंकी अधिष्ठानके ज्ञान कर दृश्य पदार्थोंके अभाव निश्चयते ग्रहण त्यागकी इच्छा निवृत्त भयी है, ते विद्वान् किसका ग्रहण करें औ किसका त्याग करें॥ १५॥

ननु बाधितानुवृत्तिकर विद्वान्को पदार्थोंकी प्रतीति न होवै, तो जीवन उपयोगी भिक्षा अशनादि व्यवहारकी सिद्धि होवै नहीं, बाधित पदार्थोंकी प्रतीति स्वीकार होवै, तो प्रतीतिके विषय पदार्थोंमें इच्छा अवश्य होवैगी। ताका अभाव संभवै नहीं? या शंकाके उत्तरका:—

दोहा—जैसे दिनगरके उदय, दीपक द्युति दुरि जात॥ तैसे ब्रह्मानंदमें, आनंद सबै बिलात॥ १६॥

टीकाः—जैसे आदित्यके उदय भये, कोटि दीपकोंका प्रकाश आदित्य प्रकाशके अवांतर वर्तै है। तैसे विषयानंदादि समग्र आनंद, विद्वानको ब्रह्मानंदके अवांतर प्रतीत होवै हैं, या अभिप्रायते ब्रह्म भिन्न पदार्थोंमें इच्छाका अभाव कहा है। बाधित अनुवृत्तिकर पदार्थोंकी अप्रतीतिसे नहीं ॥ १६ ॥

ननु परमत निश्चय करने अर्थ, न्यायादि शास्त्रोंमें विद्वान्‌की प्रवृत्ति संभवै है? तहां सुनोः—

दोहा—गरुड़ तहां वाहन सबै, रस सब अमी समीप॥ ज्ञानदिवाकरके उदय, सब मत ह्वै गये दीप ॥ १७ ॥

टीकाः—जाते गरुडका वेग अश्वादि सर्व वाहनोंसे अधिक है, ताते सर्व वाहन गरुडके अवांतर हैं औ चंद्रद्वारा अमृतके अंशकी प्राप्तिते ओषधियोंमें मधुरादि रस होवै हैं, याते सर्व रस अमृतके अंतर्भूत हैं, (आदित्य औ दीपकका दृष्टांत पूर्व खोल्या है)। तैसे

न्यायादि सर्व मतोंका पर्यवसान अद्वैत निश्चयरूप ज्ञानसे इस रीतिसे विद्वान्ने निश्चय कीया हैः—पूर्व मीमांसा यज्ञादि कर्मोंके उपदेशते अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानका हेतु है औ सांख्यशास्त्र त्वंपदार्थके शोधनद्वारा ज्ञानमें उपयोगी है औ न्याय वैशेषिक बुद्धिकी सूक्ष्मतासे मननद्वारा ज्ञानमें उपयोगी हैं औ चित्तकी एकाग्रताद्वारा पातंजल शास्त्र ज्ञानका हेतु है औ उत्तर मीमांसा तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिमें साक्षात् हेतु है इस रीतिसे साक्षात् वा परंपरासे सर्व मतोंका पर्यवसान तत्त्वज्ञानमें विद्वानने सारग्राही दृष्टिसे निश्चय किया है; याते ताकी ज्ञानसे उत्तर कर्तव्यबुद्धिकर किसी शास्त्रमें प्रवृत्ति संभवै नहीं ॥ १८ ॥

(८६) अब प्रसंगको समाप्त करते हुए ग्रंथकार कहे हैंः—

दोहा—हेतु परीक्षाके सुगुरु, खंड्यो जगव्यवहार ॥ कहत शिष्य आनंद युत, वश प्रारब्ध आधार ॥ १८ ॥

टीका:—ग्रंथकार उक्तिः—सुष्ठु गुरुने शिष्यके निःसंदेह तत्त्वज्ञानकी परीक्षा अर्थ, विद्वानके भिक्षा आच्छादन ग्रहणते अधिक व्यवहारका निषेध किया; तब प्रसन्न मनवाला हुआ शिष्य, वक्ष्यमाण वचनोंसे कहे हैं:—प्रारब्धाधीन विद्वान्‌के शरीरकी स्थिति औ भोग्य होवै है, याका यह अभिप्राय है:—विद्वान्‌पर वेदकी आज्ञा तो है नहीं, जाते विद्वान्‌के व्यवहारका नियम होवै; किंतु प्रारब्धकर्मके अनुसार विद्वान्‌का व्यवहार होवै है ॥ सो प्रारब्ध अनेकविध है:—किसी विद्वान्‌का अधिक प्रवृत्तिका हेतु प्रारब्ध है, यथा जनक आदिकोंका, किसी विद्वान्‌का निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध है, यथा वामदेव आदिकोंका, इस रीतिसे विद्वान्‌के व्यवहारमें नियम नहीं ॥ १८ ॥

(८७) आसक्तिपूर्वक क्रिया बंधनका हेतु होवै है सो ज्ञानीके है नहीं याते ज्ञानवान्‌की प्रवृत्ति स्वाभाविक होनेते बंधनका हेतु नहीं, या अर्थको शिष्य कहे है:—

शिष्य उवाच ।

दोहा—भगवन आतमवान जे, लीलाव-
त करैं भोग ॥ वस्तु बुद्धि कछु ना गहैं,
धीरजवान अरोग ॥ १९ ॥

टीकाः—हे भगवन् ! जो ज्ञानवान् हैं सो पूर्वले अदृष्टजन्य स्वभावके वशते कर्तृत्व अभिमानते विना भोगोंमें प्रवृत्त होवै हैं औ चिद् जड ग्रंथिके अभावते सत्य बुद्धिकर प्रवृत्त होवैं नहीं; काहेते धैर्यादि गुण संयुक्त हैं औ अविद्यारूप रोगसे रहित हैं ॥ १९ ॥

ननु मिथ्या बुद्धिसे ज्ञानवान्की प्रवृत्तिभी अज्ञानीकी प्रवृत्तिकी न्यांई बंधनका हेतु है, यह शंका होवै है; ताका उत्तर कहो ? तहां सुनोः—

दोहा—अज्ञानी आसक्त मति, करे सुबं-
धन हेत ॥ ज्ञानीके आसक्ति नहिं, तजै
न कछु गहि लेत ॥ २० ॥

टीकाः—अज्ञानी सर्व व्यवहार कर्तृत्व अभिमानकर करे है, याते ताको बंधनका कारण है औ ज्ञानवा-

न्को कर्तृत्व अभिमान है नहीं, याते, स्वरूप दृष्टिसे न किसीका ग्रहण करे है औ न त्याग करे है; याते ताकी प्रवृत्तिही संभवै नहीं तो बंधनकी शंका कैसे बने ? ॥ २० ॥

(८८) ननु कर्तृत्व अभिमान ज्ञानीको काहेते नहीं ? या शंकाके होयां विद्वान्की दृष्टिमें कर्ता भोक्ता जीव नहीं, या अर्थको दो दोहोंकर दिखावे हैं:-

दोहाः-हौं अबोध अनंत गति, परस्यो चित्त समीर ॥ बहु कल्लोल तामें उठैं, नाना रूप शरीर ॥ २१ ॥ चित्त वात भयो शांत अब, जीव लहरि भइ लीन ॥ केवल रूप अनंद हौं, रह्यो शुभाशुभ हीन ॥ २२ ॥

टीकाः-देशपरिच्छेदते रहित समुद्ररूप स्वमहिमामें स्थित मेरे आत्मामें, अघटन घटन पटीयसी मायाकर, चित्तरूप वायुके संबंधसे, देव तिर्यक् मनुष्यादि

शरीररूप बहुत लहरियां तामें उत्पन्न भयीं। याका यह यह अभिप्राय हैः—शरीरोंके अभिमानी चिदाभासरूप जीव उत्पन्न भये! अब गुरुमुखात् विचारित महावाक्यते तत्त्वज्ञानकर, चित्त रूप वातकी निवृत्तिते चिदाभास जीवरूप लहरियोंकी निवृत्ति कर, पूर्व उक्त देशपरिच्छेदरहित शुद्धात्मा स्वमहिमामें स्थित हूं। इस रीतिसे कर्त्ता भोक्ताके अभावते ज्ञानवानकी शुभाशुभमें प्रवृत्ति होवै नहीं॥ २१॥ २२॥

(८९) औ जो कहो विद्वान्‌की दृष्टिमें कर्त्ता भोक्ताका अभाव काहेते है? तहां सुनोः—

दोहा—इंद्रादिक इच्छा करे, निश्चल पद सु अगाध॥ तहां ज्ञानिकी स्थिति सदा, मैं तू यह वह बाध॥ २३॥

टीकाः—जा अक्रिय औ अगाध पदकी प्राप्तिकी इंद्रादिक देवताभी इच्छा करे हैं औ जामें मैं गुरु हों, तू शिष्य है, यह तुझको कर्तव्य है, यह याका फल है,

इत्यादि प्रत्ययोंकाभी बाध है; तहां ज्ञानवानकी निरंतर स्थिति होनेते, विद्वान्को कर्त्ता कर्म क्रियारूप त्रिपुटी प्रतीत होवै नहीं ॥ २३ ॥

पुनः ता चिद्वस्तुकेही विशेषण कहे हैंः—

दोहा—जाग्रत स्वप्न तहां नहीं, जहां सुषु-प्ति मन लीन ॥ मैं तू तहां न संभवै, आत-म निश्चय कीन ॥ २४ ॥

टीकाः—जा पूर्व उक्त चिद्वस्तुमें जाग्रत् स्वप्न अवस्थाका अभाव है औ जो सुषुप्ति अवस्थामें मनका विलय होवै है ताकाभी अभाव है औ जामें मैं तू यह भावनाभी होवै नहीं उसी चिद्वस्तुको विद्वानने अपना आत्मा निश्चय किया है ॥ २४ ॥

(१०) ननु ज्ञानवान् अनेक तरांके व्यवहारकर्तें प्रतीत होवै है,याते तिनके फसकरभी बंधायमान होवैगा ? तहां सुनोः—

दोहा—ज्ञानि करे अनेक कर्म, विधिवत

जग व्यवहार ॥ लिपै न धूमाकाश ज्यों, जान्यो जगत असार ॥ २५ ॥

टीका:-ज्ञानवान् यद्यपि देह इंद्रिय मनके धर्म जानकर विधिपूर्वक अनेक यज्ञादि कर्म करे है, औ खान पान लेन देनादिक लौकिक व्यवहार करे है, तथापि जैसे धूमादिकोंकर आकाश मलिन होवै नहीं, तैसे ज्ञानवान् कर्मोंके फलकर बंधायमान होवै नहीं, काहेतें जाते सर्व जगतको मिथ्या जान्या हैं ॥ २५ ॥

(९१) अब योगी ज्ञानकी निष्ठा कहे हैं:-

दोहा-जाग्रतमांहि सुषुप्तिसी, मतवारे-की केल ॥ करे चेष्टा बाल ज्यो, आतमसुख रह्यो झेल ॥ २६ ॥

टीका:-अष्टांग योगके अभ्यासकर उपरतिकी दृढताते विद्वानका जाग्रत् व्यवहारमे इष्टानिष्टकी विस्मृति सुषुप्तिके तुल्य होवै है। जो कहो इष्टानिष्टके ज्ञान विना विद्वान्का व्यवहार कैसे सिद्ध होवै है ? तहां सुनो:-

जैसे उन्मत्त पुरुष क्रीडा करे है औ बालक जैसे इष्टा-निष्टके ज्ञान विना चेष्टा करे है, तद्वत् विद्वानभी प्रवर्ते हैं। उन्मत्त औ बालकते विद्वान्का भेद कहे हैं:-विद्वान् निरावरण आत्मानंदका अनुभव करे है॥ २६॥

(९२) अब विद्वानको इष्टानिष्ट पदार्थकी प्राप्तिसे हर्षशोकका अभाव कहे हैं:-

सोरठा-स्वप्न राव भयो रंक, प्राणा तजे तहँ क्षुधा वस॥ जागै वही प्रयंक, कह विस्मय कह हर्ष पुनि॥ २७॥

टीका:-जैसे कोउ राजा, सेजामें शयन करे तहां निद्रामें ऐसा स्वप्न देखै, मैं कंगाल हों, अन्नके अलाभते क्षुधाकर मेरे प्राण जावे हैं तब अदृष्ट बलते जागके देखे मैं राजा हों, सेजापर पड्या हों, तब सो राजा जैसे राज औ कंगालताके लाभते हर्षशोककूं नहीं भजे है; तद्वत् विद्वानबी जान लेना॥ २७॥

(९३) अब प्रकरणकी समाप्ति करते हुए ग्रंथकार, शिष्यका सिद्धांत कहे हैं:-

दोहा–आस्तिक नास्तिक नहिं कछु, नहीं तहँ एक न दोय ॥ लघु दीरघ नहिं अगुन गुन, चित्स्वरूप मम सोय ॥२८॥

टीकाः–अर्थ स्पष्ट ॥ २८ ॥

दोहा–अगह अगोचर एकरस, निरवचनी निरवान ॥ अनाथ नहीं को भूमिका, जापर कथिये ज्ञान ॥ २९ ॥

टीकाः–ग्रंथकार उक्ति शिष्य कहे हैंः–मेरा स्वरूप कर्म इंद्रियोंकर ग्रहण होवै नहीं, तथा ज्ञान इंद्रियोंका विषय नहीं, इसीतें एकरस है औ किसी वचनका विषय नहीं औ जामें सर्व दुखोंका अभाव है ऐसा है। औ किसी भूमिकाका क्रम होवै तिसमें तो कथन भी संभवै, ज्ञानकी सप्तभूमिकाकी कल्पना तामें नहीं, याते तहां प्रश्न उत्तररूप कथत संभवै नहीं ॥ २९ ॥

(९४ अब शिष्यके सिद्धांतको श्रवण करके गुरु शिष्यकी प्रशंसा करे हैंः– श्रीगुरुरुवाच ।

दोहा—धन धन शिष्य उदार मति, पायो मतो अनूप ॥ सुगुरु खोज लीनो भले, भयो सुशुद्ध स्वरूप॥ ३० ॥

टीका:—ग्रंथकार उक्तिः— सुष्ठु गुरुने शिष्यके सिद्धांतमें शंका करके भली प्रकार निश्चय किया जो शिष्यकी ब्रह्मरूपसे स्थिति भई है, तब गुरु कहे हैं:— हे शिष्य! जाते तैंने अनूप ब्रह्ममें स्थिति पाई है, ताते तू धन्य कहिये कृतकृत्य है; याहीते उदारबुद्धि है॥ ३० ॥

(९५) अब समग्र ग्रंथकर, कहे समग्र अर्थको संग्रह कर दो दोहोंसे कहे हैं:—

दोहा:—सुनि विचार बहराइ हो, बिसर वाक्य थकि जाय॥ अनाथ विवेकी जानि है, गायब बाजी पाय ॥ ३१ ॥

टीका:—ग्रंथकार उक्तिः— विवेकी कहिये चतुष्टयसाधनसंपन्न अधिकारी, जब श्रवण करे औ मनन करे औ श्रवण करे अर्थमें वृत्तिकी स्थितिरूप निदि-

ध्यासन करे औ विसर वाक्य थकि जाय कहिये नि-
दिध्यासनकी परिपाक अवस्थारूप समाधि करे; तब
बाजी पाय कहिये जैसे बाजीगर अपनी मायाकर
छिपन होवै है, तैसे गायब कहिये सविलास अज्ञानकर
आच्छादित चैतन्यकूं जाने है ॥ ३१ ॥

(९६)दोहा—यह विचारमालहु सरस, बहु-
विध रच्यो विचार॥ साधन सिद्ध प्रगट
किये, अनाथ भले प्रकार॥ ३२॥

टीका:—यह तत्त्वका विचार, मालाके सदृश मु-
मुक्षुकरि निरंतर करणीय है। अर्थ यह है:—जैसे जप-
कर्ता पुरुष निरंतर माला फेरता है, तैसे मुमुक्षुने निरंतर
तत्त्वका विचार करणा। याहीते सो विचार नानायुक्ति-
योंसे कहा है। जो कहो, सो विचार कह्या चाहिये?
तहां सुनो:—साधन कहिये विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति,
मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, तत्त्वंपदार्थोंका
शोधन, औ श्रोत्रसंबंधी महावाक्य अरु सिद्ध कहिये

तिनोंका फल ब्रह्मात्माका अभेद निश्चयरूप विचार, सो या ग्रंथमें हमने भली प्रकार कह्या है ॥ ३२ ॥

(१७) अब ग्रंथका असाधारण अधिकारी कहे हैं:—

दोहा—बँध्यो मान चाहत छुट्यो, यह निश्चय मनमाहिं ॥ विचारमाल तापर रची, अज्ञतज्ञ पर नाहिं ॥ ३३ ॥

टीका:—यद्यपि अधिकारी पूर्व कहा है, इहां कहनेका कछु प्रयोजन नहीं, तथापि सो भाषा औ शारीरकादि संस्कृत वेदांतग्रंथोंका साधारण कहा है औ इहां वक्ष्यमाण अभिप्रायसे या भाषा ग्रंथका असाधारण अधिकारीके कथन अभिप्रायसे पुनः कहा है । सो अभिप्राय यह है:—मैं अविद्या तत्कार्यकर बंधायमान हूं याते किसी प्रकारसे छूटूं, यह निश्चय जाके अंतःकरणमें है औ शारीरादि संस्कृत ग्रंथोंके विचारनेमें सामर्थ्य नहीं, ऐसा जो मंदबुद्धिवाला मुमुक्षु है, तापर यह विचारमाला ग्रंथ है । अज्ञ जो विषयी औ पामर हैं औ तज्ज्ञ जो ज्ञातज्ञेय विद्वान् हैं तिनपर नहीं ॥ ३३ ॥

(९८) अब मुमुक्षुकी प्रवृत्ति अर्थ, तीन दोहोंकर या ग्रंथकी प्रशंसा करे हैं:—

दोहा—और माल रतनादि जे, घात होत तिन हेत ॥ अद्भुत मालविचार यह, तस्कर वश करि लेत ॥ ३४ ॥ षट्दर्शनकी माल जे, अपनो पक्ष लिये जु ॥ द्वैतरहित रुचि माल यह, शोभत सबन हिये जु ॥ ३५ ॥ राव रंग मन भावती, वरणाश्रम सुख दैन ॥ रुचि विचारमाला रची, चितवत अति चित चैन ॥ ३६ ॥

टीका:—योगी जंगम सेवड़े विप्र संन्यासी औ दरवेश ये षट् दर्शन हैं, अन्य स्पष्ट ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

(९९) अब तत्त्वविचारका महात्म्य कहे हैं:—

दोहा—अनाथ श्रवण बहुते किये, कह्यो

बहुत परकार ॥ अब सुविचार विचार पुनि, करण न परै विचार ॥ ३७ ॥

टीकाः—स्वामी अनाथदासजी कहे हैं:—बहुते ग्रंथोंका श्रवण किया औ बहुत प्रकारसे कथन किया, तथापि कृतकृत्यता न भई; अब सुष्ठु तत्त्वविचारकूं विचारिके बहुत विचार करना परे नहीं ॥ ३७ ॥

(१००) अब अपनी नम्रता सूचन करते हुए ग्रंथकार, दो दोहोंकर कवियोंसे प्रार्थना करे हैं,—

दोहा—क्षमा करो शिष जानके, हे कवि महाप्रबुद्ध ॥ लेहु सुधार विचारके, अक्षर शुद्ध अशुद्ध ॥ ३८ ॥ हौं अनाथ केतिक सुमति, वरणो माल विचार ॥ राम मया सतगुरु दया, साधुसंग निरधार ॥ ३९ ॥

टीकाः—अर्थ स्पष्ट ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

(१०१) अब ग्रंथके रचनेमें हेतु कहे हैं:—

दोहा—पुरी नरोत्तम मित्र वर, खरो अतिथि भगवान ॥ वरणी माल विचारमें, तिहि आज्ञा परमान ॥ ४० ॥

टीकाः—अब परंपरासे श्रुतकथा लिखे हैं:—अनाथदासजी औ नरोत्तमपुरी जो परस्पर स्नेहके वशते विरक्त हुए साथ विचरते भए, कछु काल पीछे अदृष्ट वशते वियुक्त हुए, अनाथदासजी काश्मीरमें प्राप्त भए औ नरोत्तमपुरीजी विचरते हुए गुजरात देशमें बड़ोदे नाम नगरमें प्रारब्धवशते राज्योंकर पूज्य होते भए, तब नरोत्तमपुरीजीने विचार किया, हमारे मित्र अनाथदासजी यद्यपि विरक्त हुए काश्मीरमें विचरे हैं, तथापि पूर्व संप्रदाय उक्त भेदवादके संस्कारते अद्वैतनिष्ठाते च्युत भए हैं वा अद्वैतमें निष्ठावान् हैं, या परीक्षाके अर्थ पत्रिका लिखके ताके समीप पहुँचाई । ता पत्रिकामें यह लिखा परमेश्वर चिंतन अर्थ बहुत मोलवाली एक माला हमारे समीप भेजो । ताको पढ़के औ ताके अभिप्रायको

जानके अनाथदासजीने यह विचारमाला रची । सो कहे हैंः–नरोत्तमपुरी जो हमारे श्रेष्ठ मित्र हैं, पुनः कैसे हैं ? एक परमेश्वरही अतिथिवत् भली प्रकार जिनका पूज्य है, ताकी आज्ञाका स्वीकार करके हमने यह विचारमाला नाम ग्रंथ रचा है ॥ ४० ॥

(१०२) अब या ग्रंथका माहात्म्य कहे हैंः–

दोहा–लिखै पढै अति प्रीति युत, अरु पुनि करै विचार ॥ छिन छिन ज्ञानप्रकाश तिहिं, होय सु रविहि प्रकार ॥४१॥

टीकाः–जो पुरुष या ग्रंथको लिखे औ प्रीतिपूर्वक गुरुमुखात श्रवण करे तथा एकांतमें स्थित होयके विचारै, ता पुरुषको प्रतिक्षण प्रकाशरूप ब्रह्मनिष्ठा दृढ होवै । जैसे उदयसे लेके मध्याह्नपर्यंत प्रतिक्षण सूर्यका प्रकाश वृद्ध होवै है तैसे ॥ ४१ ॥

(१०३) अब जिन ग्रंथोंका अर्थ संग्रह कर या ग्रंथमें लिख्या है, तिनके नाम कहे हैंः–

दोहा–गीता भरथरिको मतो, एकादश-

की युक्ति ॥ अष्टावक्र वसिष्ठ मुनि, कछु-
क आपनी उक्ति ॥ ४२ ॥

टीका:-"कबहूं न मन थिरता गही" औ "निह संशय मन है चपल" इत्यादि वाक्योंकर गीताउक्त अर्थ कहा। औ "नदि आशा" इत्यादि वाक्योंकर भरथरीका मत कहा। औ "अति कृपालु नाहि द्रोह चित" इत्यादि वाक्योंकर एकादशकी युक्ति कही। औ "विषवत विषय बिसार" इत्यादि वचनोंकर अष्टावक्र उक्त अर्थ कहा। औ सप्तभूमिका औ प्रपंचका अपवाद प्रतिपादक वचनोंकर वसिष्ठ उक्त अर्थ कहा। इन वचनोंका संबंध प्रतिपादक कछु इक अपनी उक्ति है ॥ ४२ ॥

(१०४) सोरठा-सत्रहसै छब्बीस, संवत
माधव मास शुभ ॥ मो मति जितिक हु-
तीस, तेतिक बरणी प्रकट करि ॥ ४३ ॥

टीकाकारकी उक्तिः-

(१०५) दोहा-बालबोधिनी नाम

यहि, करो सारथिक शोच ॥ मूल सिंधुमों बिंदुसम, लिख्यो अरथ संकोच ॥ १ ॥
कह्यो ज्जु किंचित अरथमें, सो वेदांतको सार ॥ भले विचारे याह जो, संसृति नसें अपार ॥ २ ॥ संवत शशि गुण ग्रह शशी, गती अंक लिख वाम ॥ ज्येष्ठमास पख कृष्ण शुभ, तीज सोभ सुख धाम ॥ ३ ॥

कवित.

मायिक प्रपंचमाहिं सिंधु नाम देश आ-
हि तामें साधुबेला नाम ॥ साधु जन गा-
वहीं ॥ तासमें निवासा करैं ब्रह्मानंदमाहिं
चरैं पालक प्रसाद हरि संत मन भावहीं ॥
संत जे समीप वसें तप कर तनु कसें
इंद्रिय मन रोक ध्यान ब्रह्ममें लगावहीं ॥
अष्टम विश्राम जोइ इति भयो तामें

सोई लिख्यो आया रामदास गोविंद सुनावहीं ॥ ४ ॥

श्लोक.

गोविंददासरचिता, शुद्धा पीताम्बरेण या ॥ सा बालबोधिनी टीका, सदा ध्येया मनीषिभिः ॥ १ ॥

इति श्रीविचारमालायां आत्मवान्‌की स्थिति वर्णनं नाम अष्टमविश्रामः समाप्तः ॥ ८ ॥

इति श्रीसटीका विचारमाला समाप्ता.

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीगुरुरामाय नमः ॥ अथ ज्ञानकटारी लिख्यते ॥ दोहा ॥ वृत्तिव्याप्ति एकाग्रचित ॥ यहीहमारोध्यान ॥ ब्रह्मरूपगुरुरामको ॥ नमस्कारसोइ-मान ॥ १ ॥ परमगुरूश्रीरामके ॥ चरणेराखूंध्यान ॥ प्रस्तावीमेंकहतहों ॥ ग्रंथकटारीनाम ॥ २ ॥ इंदवछंद ॥ लोहकटारिसबैकोउबांधत ॥ ज्ञानकटारिसुदुर्लभभाई ॥ लोहकटारिजुखाइमरेजंत ॥ सोअवतारधरेभवमाई ॥ ज्ञा-नकटारिकोखावतहैंसंतब्रह्मस्वरूपअखंडहोजाई ॥ फेरक-बूजनमैंनमरेंहरिसंगसंतापकछूनरहाई ॥ ३ ॥ मनोहर-छंद ॥ ज्ञानकोप्रकाशसोतोहीरामणिरत्नजेसो ॥ ताको-अंधकारकेतपामरठेराइके ॥ ऐसोहींअन्यायकरे ॥ ता-हिसेंचोरासिफिरें ॥ बेरबेरकहाकहोंतोहिंसमुजाइके ॥ धि-क्तेरोजीवनहैमिथ्यानरदेहधरि ॥ मरेक्योंनमूढतूकटारी-पेटखाइके ॥ हूंतोहरिसंगसुखदुःखहुतेन्यारो खाइ ॥ ज्ञान-कीकटारीसतगुरुगमपाइके ॥ ४ ॥ हीरामणिरत्नसोतोज-डहिप्रकाशआपु ॥ आपकोनजानेतासुजानोएकदेसीहै ॥ ज्ञानतोस्वयंप्रकाशआपकोबिजानेपुनि ॥ चिद्घनएकरस-

शुद्धसर्वदेशीहे ॥ जानतूस्वरूपतेरोअस्तिभातिप्रियऐसो ॥ दुःखरूपमानिरह्योतेरीमतिकेसीहे ॥ केतहरिसंगमिथ्या-देहकोतूमानेमूढ॥ मेरोकह्योमानेतोकटारीखाइजेसीहे॥५॥ भक्तिसोनजानेप्रभुन्यारोकरिमानेतासे ॥ होतहैहरिकोद्रो-हीफेरचितचाइके ॥ भक्तिअरुज्ञानइकभिन्नहिनजानोको-उ ॥ एकताहैभक्तिकृष्णकहिगीतागाइके ॥ लोकहुरि-जावेराधाकृष्णकोविहारगावे ॥ निंदामेंअस्तुतिमानेम-नमेंसराइके ॥ केतहरिसंगमिथ्यादेहमेंअध्यासकरि ॥ मेरेक्योंनमूढतूकटारीपेटखाइके ॥ ६ ॥ अजअविनाशी-एकअखंडअपारप्रभु ॥ ताकोतोकहतउठहाथकोबनाइ-के ॥ जगतकेमाततातताकितोउगारीबात ॥ केतेहोतू-नाचेकृष्णगोपीबानिआइके ॥ अजन्माकोजन्मजानेवेद-कीनबातमाने ॥ तातेजातकालहिकेमुखमेंचवाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ ७ ॥ आपहोइजीवपापीव्यभिचारीभ-क्तिकरे ॥ केतप्रभुपाऊंगोमेंवैकुंठहुजाइके ॥ कोउतो कहतमोक्षमोक्षहुशिलाकेमाहि ॥ कोउतोकहतगोलो-कमहुधाइके ॥ देशकालवस्तुपरिच्छेदसेरहितप्रभु ॥

ताकोकहेएकदेशीमनमेंफुलाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ ८ ॥ करिसतसंगसुधारसक्योंनपीवेतूतो ॥ होतराजीबहुतविषयलपटाइके ॥ बांधेटेढ़ीपागपैरेधोतीसोकिनारीदार ॥ अंगपरओढ़िलेतदुपेटोरंगाइके ॥ बोलेमीठीबातकहेबहुतसिहानोंसतसंगमेंनआवे कभीलोकसेलजाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ ९ ॥ ज्ञानकीकटारीकासि बांधतेरीकमरसें ॥ जाइसतगुरुपासलीजियेसजाइके ॥ शुद्धहिविचारकरिमारकामक्रोधहिको ॥ म्यानसेंनिकासिलेतुहाथमेंहलाइके ॥ करयाकीचोटआरपारहिनिकासितेरोजानतूस्वरूपजीवभावकोमिटाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ १० ॥ दुर्लभतेंदेहधरिकहातेंकमाइकरि ॥ भूल्योनिजानंदहरिदेहबुधिलाइके ॥ जंत्रमंत्रसाधेभूतप्रेतहिकोबांधेतासेंकायाक्रमबांधेदेहभावदेजलाइके ॥ बेरबेरनाहिनरदेहतोकोआवेऐसो ॥ मुक्तिकोदुहारदेतधूलिमेंमिलाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ ११ ॥ जपैरेअजपाजापसोइहैतूआपेआप ॥ निश्चयकरिमानध्यानबैठजालगाइके ॥ देहबुधिटारिरूपआपकोसंभारिकामक्रोधलोभमोहयाको दीजियेभ-

जाइके ॥ शुद्धतूस्वयंप्रकाशछोड़देबिरानीआस ॥ होतक्युं-
हेरानमूढमिथ्यामेंगंठाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ १२ ॥ शुद्ध-
हिविचारसोपोलादकीकटारिकरि ॥ गुरुज्ञुलहारपासली-
जिये गडाइके ॥ गडिभलेघाटयाकोअग्निमांहितातिकरि ॥
प्रेमरूपीपानिवाकोदीजियैचढ़ाइके ॥ नामरूपरहितकटा-
रिसुदुरसकरिशुद्धबुद्धिम्यानतामेंराखियेद्रढाइके ॥ केतहरि-
संग० ॥ १३ ॥ करिचारोधामसवैतीरथमेंगुम्योअरुभयोहैप-
वित्रगंगागोमतीनहाइके ॥ कीनोहठजोगतासेंजायगोक्यों
रोगमूढइच्छेस्वर्गादिकभोगबैठेक्याकमाइके ॥ तासेंतेरोज-
नममरननाहिछूटेतूतोजानानिजानंदघनउलटसमाइके ॥ के-
तहरिसंग० ॥ १४ ॥ खीरनीरएकजानिदूधसोतैंडारिदीनु ॥
कियोनविचारवैठेपानिकोजमाइके ॥ तासेतोतूसारक्या
निकासेगोमथनकरि ॥ आपभूलि औरकोभुलावेभरमा-
इके ॥ मुखसेकहतएकआतमासकलमांहिं ॥ देखि-
परदोषचित्तरेतचरमाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ १५ ॥
आपजोकहतबातज्ञानकीबनाइकरि ॥ मनमेंरहतराजि
लोकमेंपुजाइके ॥ औरकहेबातकोऊज्ञानकीकिसीको

तब ॥ जानेमेरोमानगयोमरेयोंमुंजाइके ॥ जानेएकमैं-
हिहोंतोद्वैतभावछूटिजाय ॥ अंतरकिआगतेरीचैठतूबु-
जाइके ॥ केतहारिसंग० ॥ १६ ॥ देहअभिमानीक्याबि-
लोवेबैठेपानीबातकाहुकीनमानीतूतोबोलतचगाइके ॥
आपकोअधिकजानिऔरकीतोहांसिकरे ॥ काहेकोमरत
सोतेसांपकोजगाइके ॥ बहुतकमायोधनपेटमेंनखायो
परतियसोंलोभायोतोकूंलेवैगीबुगाइके ॥ केतहारिसंग०
॥ १७ ॥ बजावैमृदंगतालख्यालखासेगावेआपरहेआ-
ठेयामरंगरागमेंभिजाइके ॥ आपकीसरावेबातऔरकी
नभावेदेखी ॥ आपकोअधिकमानिमूछमरडाइके ॥ हृ-
रिकेनगावेगुणविषैबातभावेमुख ॥ ज्ञानकीतोबातसुनि
ऊठताखिजाइके ॥ केतहारिसंग० ॥ १८ ॥ हंससेकहावेअ-
रुलच्छनतोकाकहिके ॥ बोलतगुमानभरीमुखमुसकाइके ॥
हंससोतोमोतीचुगेमंसकोपचैयाकाक ॥ बैठेछांददेशपर-
फिराहिफिराइके ॥ ऐसेखललोकहैंसोसारहिकोत्याग-
करि ॥ वस्तुजोअसारताकोराखतग्रहाइके ॥ केतहारिसं-
ग० ॥ १९ ॥ कहावेकपूरदेनहींगकीतोवासनाहि ॥ ना-

मधनपालधरेभीषमांगेखाइके ॥ पढ़्योहैवेदांतकछुबोलबे-
कोसीख्योतब ॥ वादहिविवादकरैयुगतिलगाइके ॥ पो-
पटज्योंबोलेह्हदेग्रंथि सोनखोलेसारासारहिनतोलेतासेंर-
ह्योहैठगाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ २० ॥ बनजकोआयो
कहा हांसिलकमायोधनगांठकोगमायोभयोभिषारीलुटा-
इके ॥ सीष्योचारोवेदताकोभेदजोनजानेतोतूफिरतहो
योंहीखालीबोजकोउठाइके ॥ धनहिअखूटतेरेहाथसोंग
माइकरि ॥ आपषूटिऔरकोतूदेतहोखुटाइके ॥ केतह-
रिसंग० ॥ २१ ॥ सतगुरुदेवब्रह्मवेत्ताकेशरणजाइचोरासी-
कोफंदतोकोदेवेंगेछुड़ाइके ॥ कौनहूंमैं कांसेआयोकरिले-
विचारऐसे ॥ देहरूपहोइरह्योदेहमेंजुडाइके ॥ देहको
प्रकासीतीनकालमेंनहोइदेह काहेकोतूबंधफिरछूटजातु-
ड़ाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ २२ ॥ बाहिरसेवृत्तितेरीखेंचि
करभीतरको ॥ सोहंसोहंजापसदारह्योहैजपाइके ॥ आं-
बकोउखेड़िपेड़बबुलकोबीजबोवे ॥ ताकीतूकरतवाड-
चंदनकपाइके ॥ हीरासोतोमूठिभारिफेकिदेतद्धारबार ॥ जू-
तीकोजतनकरिराखतचुपाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ २३ ॥

तूतोचिदानंदघनआतमाअखंडताको जीवजानिदेतभव-
सिंधुमेंडुबाइके ॥ नाहितीनदेहतेरेस्थूलअरुसूक्षमजुकार-
नकोसाक्षीहोइदीजियेउड़ाइके ॥ काजनअकाजकछुकि-
योनविचारगरवारतजिजाइबैठोमुंडहुमुंडाइके ॥ केत-
हरिसंग० ॥ २४ ॥ जातिकुलवरनकोतज्योअभिमान-
माततातहिकोनामसोतोदीनुहैभुलाइके ॥ औरहि च-
ढ़योरंगबाढ़योअभिमानदेखो ॥ काढ़िकेबिलाड़ीबेठोऊ-
ठहिगुसाइके ॥ लोकमेंपुजावेआपगुरुहिकहावेमनबहुत
फुलावेदेखोपंचमेंपुछाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ २५ ॥
सवैया ॥ दुर्लभदेहधरीसोखरीकबहींसतसंगतैनाहिकि-
यो ॥ विषेभोगकोभावकरीकपटीभवसागरपूरमैजातब-
यो ॥ तूतोपुत्रपशूधनधामदारासबमेरोमेरोकरिमोहिर-
ह्यो ॥ हरिसंगकेशुद्धविचारविनाऐसोमूढकोमालिकहो-
इरह्यो ॥ २६ ॥ सुखीहोयसदादुखदूरतेरोसतसंगमेंजामे-
रोमानकह्यो ॥ तूतोभूलिगयोइकभीतसबैब्रह्मज्ञानपदा-
रथक्योंनग्रह्यो ॥ तुच्छभोगनिकाजउपावअनेककरीश-
ठसंगतिआयुबह्यो ॥ हरिसंगकेशुद्धविचारविनाऐसोमू-

ढकोमालिकहोइरह्यो ॥ २७ ॥ मनोहरछंद ॥ करतगुमा-
नएकदेहअभिमानऐसो आपमाहिंआपैआपफूल्योही
फिरतहै ॥ नाहिवप्रुतीनितेरेचेतनस्वरूपशुद्धगीतागुरुवेद-
वाक्यसाषजोभरतहै ॥ साररुअसारहिकौकरिलेविचार
आपदेहकोहुंमानिमूढकाहेकोमरतहै ॥ जानोहरिसिंगस-
तगुरुगमभयोतबचौरासीकेफंदहुमेंकबूनपरतहै ॥ २८ ॥
दोहा ॥ हर्षशोकमनकोगयो ॥ शांतभयो है चित्त॥ सद्गुरु
रामप्रसादतें ॥ जान्यो नित्यानित्य ॥ २९ ॥ नित्यानि-
त्यविवेकसे ॥ भईअविद्यानाश ॥ हर्षशोकतेरहितजो ॥
सोहंब्रह्मप्रकाश ॥ ३० ॥ आपप्रकाशअखंडहों ॥ सत-
चिदआनंदरूप ॥ हरीसंगमनतेपरे ॥ सोहंब्रह्म अनूप
॥ ३१ ॥ ज्ञानकटारीग्रंथयह ॥ सूक्षमकह्योजुभाइ ॥ शुद्ध-
मुमुक्षूपरसदा अज्ञतज्ञपरनाइ ॥ ३२ ॥ उन्नीससेछैमेव-
रष ॥ भयोसुपूरणजान ॥ मृगसिरमासरुशुक्लतिथि ॥
नवमीअरुभृगुमान ॥ ३३ ॥ इति श्रीरामगुरुशिष्यहरिसं-
गकृतज्ञानकटारीग्रंथ संपूर्ण ॥
